बिसरती पद्धतियाँ, बिसरता जीवन

USAID
FROM THE AMERICAN PEOPLE

CRS
CATHOLIC RELIEF SERVICES

Gravis
Working with Desert Communities for the Empowerment of Poor

बिसरती पद्धतियाँ,
बिसरता जीवन

तकनीकी सहयोग

हैडकॉन

हैल्थ एनवायरनमैन्ट एण्ड डवलपमैन्ट कन्सोर्टियम

67/145, प्रताप नगर, सांगानेर, जयपुर-302022

फोन : 0141–2792994, फैक्स : 0141–2790800

ई-मेल : hedcon2004@yahoo.com वेबसाइट : www.hedcon.org

प्रकाशक

ग्राविस

ग्रामीण विकास विज्ञान समिति

3/458, मिल्कमैन कॉलोनी, पाल रोड, जोधपुर, **342008** (राज.)

फोन : **0291–2785317** फैक्स : **0291–2785549**

ई-मेल : gravis@datainfosys.net वेबसाइट : www.gravis.org.in

वित्तीय सहयोग

सी.आर.एस (USCCB)

.

परंपरागत तकनीक

राजस्थान विविधताओं से परिपूर्ण एक ऐसा राज्य है, जहाँ एक तरफ रेगिस्तान है तो दूसरी तरफ ऊँचे–ऊँचे पहाड़ और घने जंगल हैं। यहाँ पर गरीबी अपनी चरम सीमा पर है तो महंगे शहर भी देखने को मिलते हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार की भूमि जैसे चारागाह, गौचर, औरण, अभ्यारण आदि भी विद्यमान हैं। हमारी लोक संस्कृति हमारी ग्रामीण और जनजातीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। जनजातीय और ग्रामीण लोग चाहे गांव में निवास करते हों या जंगल में, या फिर वर्षभर एक जगह से दूसरी जगह पर घूमते रहते हों, उनके पास प्रतिभा की कोई कमी नहीं होती। उनके लिये तो कला भी जिन्दगी का एक आम हिस्सा है। अपनी निपुणता और रचनात्मकता के सहारे ही वे अपने साधारण से जीवन को बहुरंगी और सजीव बनाने में सफल रहते हैं।

थार रेगिस्तान 0.60 मिलियन वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ, संसार का सबसे अधिक सघन, अद्वितीय एवं रुक्ष प्राकृतवास है। कर्क रेखा के समानान्तर, भारतवर्ष के चार प्रदेशों में फैले थार क्षेत्र का 68.8 प्रतिशत भाग राजस्थान में स्थित है। थार के करीब 60 प्रतिशत हिस्से पर कम या ज्यादा खेती की जाती है और करीब 30 प्रतिशत हिस्से पर वनस्पतियाँ हैं, जो मुख्यतः चारागाह के रुप में ही काम में आती हैं। वर्षा की अनियमितता इस तथ्य से प्रतीत होती है कि कुछ इलाकों में वर्षा की मात्रा औसतन 120 मिमी. से भी कम है। हर दस वर्ष में चार वर्ष सूखे गुजरते हैं। इससे खेती प्रायः मुश्किल हो जाती है। अधिकांश हिस्से में 4 से 5 महीनों तक तेज हवाएं चलती हैं और गर्मियों में रेतीले तूफान बहुत आम बात हैं। पर

इस इलाके में मौजूद हरियाली भले ही वह कितनी भी कम क्यों न हो, विविधता भरी है। यहाँ करीब 700 किस्म के पेड़ पौधे पाये जाते हैं, जिनमें से 107 किस्म की घास होती हैं, इनमें प्रतिकूल जलवायु में भी जीवित रहने की क्षमता रहती है। यहाँ की ज्यादातर पैदावार पौष्टिकता और लवणों से भरी है। इसके साथ ही थार क्षेत्र में सबसे उन्नत किस्म के पशु मिलते हैं, उत्तर भारत में श्रेष्ठ किस्म के बैल यहीं से जाते हैं और देश की 50 प्रतिशत ऊन का उत्पादन यहीं होता है। थार क्षेत्र की खेती एवं जमीन का उपयोग पूर्णतः वर्षा पर ही निर्भर है। वर्षा अच्छी हुई तो फसल एवं चारा पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है तथा वर्षा जल को नाडियों (तालाब), बेरियों, कुंडियों या टांकों में संचित कर लिया जाता है।

राजस्थान में पानी की कमी का वृत्तान्त धार्मिक आख्यान के साथ पुराने लोकाख्यानों में भी उपलब्ध है। राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोक काव्य ***"ढोला मारु रा दूहा"*** में मारवाड़ निन्दा प्रकरण के अन्तर्गत मालवणी अपने पिता को संबोधित करती हुई कहती है –

बाबा न देइसी मारुवाँ वर, कुँआरी रहेसी।

हाथि कचोजउ सिर घड़उ, सीचति य मरेसि।।

हे पिता! मुझे मारु देश (राजस्थान) में मत ब्याहना, चाहे कुँआरी रह जाऊँ। वहाँ हाथों में कटोरा (जिससे घड़े में पानी भरा जाता है) और सिर पर घड़ा रखकर पानी ढोते–ढोते ही मर जाऊँगी। यह काव्यांश बतलाता है कि पानी की घोर कमी और इसकी पूर्ति हेतु कठिन परिश्रम राजस्थान की जनता की दारुण नियति थी। यहाँ नायिका उससे बचने के लिये कुँवारी ही मरने को तैयार है, पर उसे राजस्थान जैसे जल की कमी वाले क्षेत्र में जीवन व्यतीत करना गवारा नहीं। वस्तुतः यह तथ्य भी है कि हमारे यहाँ पानी बहुत गहरे में पाया जाता है।

पानी की न्यूनता के समाधान का नियोजन यहाँ के निवासियों के द्वारा पहले से ही आँका हुआ था। वर्षा की विफलता तथा निरन्तर सूखा पड़ने का सामना करने के लिये प्रत्येक गाँव में नाड़ियाँ, छोटे–बड़े तालाब बनाये जाते थे। उनसे जल ग्रहण क्षेत्र की प्रतिरक्षा की जाती थी। वर्षा से पूर्व नाड़ियों को खोदकर उनकी संग्रहणशीलता को बढ़ाया जाता था।

हमारे गांवों में खेती के अलग–अलग चरण ऋतुओं में आने वाले बदलावों पर ही आश्रित हैं। खेतों की जुताई, बुवाई, कटाई, और अनाज निकालना तथा गोदामों में भरना ये सारे काम एक रस्म और जश्न मय माहौल में किये जाते हैं। इस तरह वार्षिक चक्र के सारे

चरण बरसात, शरद, शिशिर, हेमन्त, बसन्त या गर्मी इन सभी ऋतुओं का त्यौहारों के रुप में स्वागत किया जाता है और उत्सव मनाया जाता है। समय आने पर ये सभी परम्पराएं और शिल्प एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हाथों में चले जाते हैं।

उत्तम खेती जो हरवड़ा (हल चलाने से उत्तम खेती होगी)
मध्यम खेती जो संगराहा (साथ–साथ काम करने से मध्यम खेती)
बीज बुढ़के तिनके ताहा (बीज भी डूब जाएंगे जो तीसरे को काम दिया)
जो पूछे हरवाहा कहा (हल चलाने वाले ने कहा)

परंपरागत ज्ञान सामान्यतया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रुप से संचारित होता रहा है। इसका उपयोग भी सामान्यतया सीमित क्षेत्र, अंचल विशेष तक ही सीमित रहा है। सही अर्थों में देखा जाये तो यह ज्ञान परिवारों के मध्य में ही सिमट कर रह गया है। मनुष्य जाति के विकास के साथ–साथ मनुष्य ने भूख–प्यास को शांत करने के लिये पेड़ों के फल तथा पत्ते खाते–खाते, खेती करना तथा जल को संचय करना सीखा। कई विफलताओं के बाद उसने इस प्रक्रिया में सफलता हासिल की होगी और अपने बौद्विक कौशल को आगे बढ़ाया होगा। अनादिकाल से वह अपने बुद्धिबल के सहारे धीरे–धीरे उन्नति कर आज इस अवस्था में पहुँचा है। किंतु हम आज उस पुराने और पारम्परिक ज्ञान, जो अत्यंत बहुमूल्य एवं उपयोगी है को बहुत पीछे छोड़कर निरंतर आगे निकलने की चेष्टा में लगे हैं। प्राचीन तकनीक किसी भी रुप में वर्तमान से कम नहीं आंकी जा सकती है। जरुरत सिर्फ प्रचार–प्रसार, संरक्षण, संवर्धन, शोध और मार्गदर्शन की है। हमारी समृद्ध लोक परंपराओं को पुनः जीवित कर उनका संरक्षण एवं विस्तार करने के साथ–साथ आधुनिक पद्धतियों के साथ उनका सामंजस्य स्थापित किया जाए। यह भी संभव है कि गुणियों को संगठित कर उनमें आत्मविश्वास जागृत कर इस ज्ञान को संरक्षित करने के प्रयास किये जाएं।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने कहा था कि ***''यदि लोगों को शक्ति बोध हो तो धरती पर स्वर्ग उतर सकता है।''*** इस सांसारिक ज्ञान और बौद्धिक संपदा के खजाने को एक करने की आज अत्यंत आवश्यकता है। थार में लोगों ने जल की हर बूंद का बहुत ही व्यवस्थित उपयोग करने वाली आस्थाएं विकसित कीं और लोक जीवन की इन्हीं मान्यताओं ने इस कठिन प्रदेश में जीवन को चलाया, समृद्ध किया और प्रकृति पर भी जरुरत से ज्यादा

दबाव नहीं पड़ा।

आज के परिदृश्य में वर्तमान विद्यालयी पाठ्यक्रम व सीमित पढ़े–लिखे लोग, पारंपरिक प्राकृतिक जल संग्रहण विधि एवं कृषि तकनीकों को पुरानी प्रथा कह भूलने लगे हैं। शासन से अपेक्षा करने लगे, कि घर–घर पानी पहुँचाना उसका दायित्व है। यथा बिजली नहीं है तो पानी नहीं है। निष्क्रिय हुए ग्रामवासी सरकार पर दोषारोपण करने लगे और प्राचीन जल प्रबन्धन व्यवस्था को अनुपयोगी मानकर उन्होंने अपने आप को इस सामाजिक आवश्यकता से स्वतंत्र कर लिया। इस कारण पारंपरिक स्रोतों का रख–रखाव प्रायः समाप्त हो गया।

कृषि तकनीकें

कृषि और मानव का सम्बन्ध सबसे पुराना और गहरा है। आदिमानव ने आजीविका के लिये कृषि की खोज की। आज कृषि सबसे विकसित उद्योग है जिस पर मानव जीवन आधारित है। भारत प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण देश है। यहाँ की जलवायु एवं मौसमी चक्र के अनुसार कृषि यहाँ का मुख्य व्यवसाय है, इसलिये भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है।

भारत की 80 प्रतिशत जनता गाँवों में बसती है। गाँव में आजीविका का प्रमुख साधन कृषि और पशुपालन है। यहाँ के किसान भले ही बहुत अधिक पढ़े लिखे नहीं हैं, परन्तु कृषि में उनका ज्ञान बहुत उन्नत है। इसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने खेती के कई तरीके ईजाद किये। स्थान विशेष की मिट्टी, जलवायु, वर्षा की मात्रा एवं संसाधन के आधार पर कहाँ कौनसी फसलें करना उपयुक्त है, इसका विस्तृत ज्ञान किसानों के पास है। किसान को धरती पुत्र कहा जाता है, क्योंकि वह धरती की अनुकूलता के आधार पर खेती करते हैं। भारत की जलवायु एवं मौसम के अनुसार यहाँ पर दो प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं :– खरीफ और रबी।

खरीफ : खरीफ की फसल ग्रीष्म ऋतु की फसल मानी जाती है, जिसकी बुआई जून–जुलाई के महीने में होती है। राजस्थान में खरीफ की मुख्य फसलें बाजरा, मोठ, मूंग, ग्वार, तिलहन आदि हैं।

रबी : रबी की फसल सर्दी ऋतु की फसल है। रबी की फसल की बुआई अक्टूबर–नवम्बर के महीने में की जाती है। राजस्थान में रबी की मुख्य फसलें चना, सरसों, जौ, राई, गेहूँ, मूंगफली आदि है।

फसल की बुआई से लेकर कटाई तथा अनाज संग्रहण तक हमारे पूर्वजों ने कई तकनीकें बनाई हैं। आज भी किसान इन्हीं तकनीकों को अपनाते हुये खेती करते हैं। इस भाग में खेती के चरणों का क्रमानुसार विवरण लिखा गया है।

आज के आधुनिक युग में ट्रैक्टर से लेकर फर्टिलाइजर तक अनेक कृषि के उपकरण काम में लिये जा रहे हैं। परन्तु प्राचीनकाल से अब तक कृषि की जरुरत के अनुसार गाँवों में ग्राम स्तर पर निर्मित उपकरणों से ही खेती की जाती है। ये उपकरण आज भी उपयोगी हैं।

खेती के काम में आने वाले उपकरण

- **फावड़ा** : खेत की पाली (खड़ीन) बांधने के काम में आता है।
- **गेंती** : खेत में मिट्टी खोदने के काम में आता है।
- **तगारी** : मिट्टी डालने के काम आता है।
- **कस्सी** : खेत में व फसल में लगी खरपतवार को काटने के काम में आती है।
- **दांतरा** : खेत में फसल को काटने के काम आता है। जैसे डोका, घास, कड़ब, रायड़ा,

सरसों आदि काटने में।

- **दांतरी** : खेत में बाजरी तथा ज्वार के पौधों के सिरे (बाली) काटने के काम में आती है।
- **बई** : खेत में पाला, छोटी–बड़ी झाडियाँ, घास इकट्ठा करने व बाड़ा बनाने के काम में आती है।
- **हाहीगी** : खेत में कुतर (भूसा) भरने के काम में आती है।
- **चारसींगी/चौंकनी** : घास को इधर–उधर डालने एवं चारा (कुत्तर/भूसा) को भरने के काम में आता है।
- **हल** : खेत में बुवाई के काम में आता है।
- **खेड़ का हल** : खेत में जुताई के काम में आता है।
- **थ्रेसर** : बाजरी, ज्वार, ग्वार, गेहूं तथा सरसों आदि निकालने के काम में आता है।
- **तवी** : ट्रैक्टर के पिछे चलाकर खेत की जुताई की जाती है।
- **कल्टीवेटर** : ट्रैक्टर के पीछे चलाकर खेत में बुवाई की जाती है।
- **कुत्तर मशीन** : खेती में डोका, कड़ब, घास, सेवण, घामण, आदि को काटने के काम में आती है।
- **दंताली** : वर्मी कम्पोस्ट खाद में लगाने के काम में आता है। जिससे खाद को कीड़ा से बचाया जाता है।
- **कुल्हाड़ी (कवाड़ी)** : बड़ी झाड़ियों, कांटों को छांगने या काटने के लिये।
- **गेंती** : कठोर मिट्टी/मुरड खोदने के लिये।
- **ओड़ी/ओडा** : पशुओं को चारा एवं कचरा भरने के लिये।

भूमि तैयार करना या खेत की तैयारी

वर्षा ऋतु प्रारंभ होने से पहले किसान अपने खेत को अगली फसल के लिये तैयार करते हैं। खेत की तैयारी इसलिये आवश्यक है, ताकि बारिश होते ही बीजारोपण प्रारंभ किया जा सके। खेत की तैयारी के कुछ मुख्य चरण हैं जिनका वर्णन नीचे किया गया है –

1. सूड करना : – सूड ज्यादातर वर्षा आधारित खेती में किया जाता है क्योंकि फसल कटने के बाद से अगले मानसून आने के बीच में किसान जमीन की जुताई भूक्षरण को रोकने की वजह से जुताई नहीं करता है अतः इस बीच प्राकृतिक रुप से खेत में उग आई बेकार की खरपतवार या झाड़ियों को खेत से निकालने की प्रक्रिया को सूड करना कहते हैं। इस

प्रक्रिया में किसान द्वारा खेत में से आंकड़ी, झाडियां, बबूल तथा सीनियों के पौधे बारिश के आने से पहले काट लिये जाते हैं, जिससे खेत में हल चलाने में आसानी होती है और बीज भी अच्छी प्रकार से उगते हैं, क्योंकि बड़ी खरपतवार (कांटों) से हल चलाने वालों को परेशानी होती है और चोट लगने का डर रहता है। इस प्रकार से भूमि का सर्वोतम उपयोग हो जाता है। बड़ी–बड़ी झाड़ियों को खेत की चारदीवारी (मेंढ़) पर ले जाकर डाल दिया जाता है या फिर खड़ीन पर छाप दिया जाता है। इस काम को

खेत में फसल की बुवाई से पहले या बारिश का मौसम आने से पहले मई, जून तथा जुलाई के मौसम में करते हैं। इस काम को घर के बुजुर्गों को छोड़कर अन्य सभी सदस्य (महिला एवं पुरुष) मिलकर करते हैं। अगर सूड करने का काम नहीं करते हैं तो इससे लगभग 5 प्रतिशत अनाज की पैदावार (उपज) कम होती है, क्योंकि बेकार में उग आई खरपतवार खेत में उगने वाली फसल का स्थान तो घेरती ही है, साथ ही यह फसल को मिलने वाली नमी को भी सोख लेती है। किसान लोग यह बताते हैं कि इस प्रक्रिया का हम लोगों को सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि खेत में फसल की पैदावार अच्छी होती है तथा खेत भी समतल हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण फसल को बराबर पानी मिलता है। बेकार की झाड़ियाँ तथा घास उनके पशुओं के लिये चारे के रुप में काम आती हैं। खरपतवार को जलाने से फसल में कीड़े भी नहीं लगते हैं, जिससे फसलों को बीमारियों से भी बचाया जाता है। सूड करने में निकाली गई झाड़ियां, खेत की कानाबंदी, आंकडा झोंपों की छत तथा ईंधन के रुप में भी काम में आता है।

लागत : सूड करने में मुख्यतः किसान का परिश्रम और कुछ औजार काम में आते हैं। इसमें काम में आने वाले औजार हैं – कस्सी कीमत 100 रुपये, गंडासी (कवाडी) कीमत 50 रुपये, भोला कीमत 200 रुपये, बई कीमत 125 रुपये और चौकनी कीमत 125 रुपये।

लाभ :

- झाड़ियाँ हट जाने से फसल की अधिक उपज होती है।
- ऊबड़–खाबड़ जमीन समतल हो जाती है।
- कुछ किसान यह मानते हैं कि इससे मच्छर और कीड़े–मकोड़े भाग जाते हैं।

कानाबंदी (कणाबन्दी) : – राजस्थान की तीक्ष्ण गर्म आंधियों में भूमि के जैविक कणों को सुदूर उड़ने से बचाने की तकनीक को कानाबंदी कहते हैं। कानाबंदी की प्रक्रिया खेत में इकट्ठा हुए कार्बनिक कणों को गर्मियों के समय हवा के द्वारा उड़कर दूर जाने से बचाती है। ये कण खाद का काम करते हैं और भूमि की उर्वरक क्षमता को बढ़ाते हैं। यह प्रक्रिया भूमि के कटाव को भी रोकने में मदद करती है। (अप्रेल से मई) सीनियों या कांटों को कूट कर खेत के बीच में डाल दिया जाता है, जिससे रेत खेत में रुकती है और उपजाऊ रेत और उड़ कर आई खाद खेत में ठहर सकती है। साथ ही कांटे और सीनिया खाद के रुप में जमीन की उर्वरकता बढ़ाते हैं। गर्मी के दिनों में लू तथा आँधी ज्यादा चलती है इसलिये इसका महत्त्व ज्यादा होता है, और यह विशेष इन्हीं दिनों में की जाती है। इस काम को परिवार के सभी सदस्य मिलकर एक साथ करते हैं। इस प्रक्रिया को बारिश के दो या तीन महीने पहले करते हैं। इस प्रक्रिया में आंकडा, बबूल, कैर तथा झाडियों को काटकर इकट्ठा कर लिये जाते हैं, फिर इनको खेत की चारदीवारी पर एक कतार में लगाकर आधा फीट से एक फीट ऊँची मेड़ बना ली जाती है। ये दीवार उत्तर–दक्षिण दिशा में बनाई जाती है, क्योंकि सामान्यतः हवा पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर चलती है। आर्गनिक पदार्थों के कण इसकी सीमा पर जाकर रुक जाते हैं और वह खेत के बाहर नहीं जा पाते हैं। इसका सबसे बड़ा फायदा यह है कि छोटे कण जो कि खाद का काम करते हैं वह खेत के बाहर नहीं जा पाते और पैदावार अच्छी होती है। इससे खेत में आने वाली हवा की तीव्रता भी कम हो जाती है, जिससे हवा के चलने से मिट्टी भी क्षतिग्रस्त नहीं होती है और खेत का पानी भी खेत से बाहर नहीं जा पाता है। साथ ही मेड को भी मजबूती मिलती है।

लागत : कानाबंदी में शारीरिक श्रम और कुछ कृषि औजारों की आवश्यकता होती है। एक हैक्टेयर जमीन पर कानाबंदी करने में झाड़ियों और मजदूरी पर तकरीबन 1800 रुपये खर्च होते हैं।

लाभ :

- मिट्टी के जैविक कण हवा के साथ उड़ते नहीं है और भूमि की उर्वरक क्षमता बढ़ती है।
- खेतों में हवा की गति कम हो जाती है और भू–क्षरण कम होता है।
- कानाबंदी से मेड़ बन जाती है और वर्षा जल व्यर्थ नहीं बहता है।

मेड़बन्दी : – मेड़बन्दी भी जल और भूमि दोनों को संरक्षित करने का एक अच्छा तरीका है। मेड़बन्दी जल बहाव की गति को नियंत्रित करती है। यह जल ठहराव व भूजल को बढ़ाने में बहुत योगदान करती है। ये वर्षा काल के दौरान कटाव को भी रोकती है। भूमि के उपजाऊ तत्व भी न बहे और भूमि की उर्वरा शक्ति भी बनी रहे, इसका यह एक खास लाभ

है। मेड़बन्दी का निर्माण किसान स्वयं अपने खाली समय में अपने परिवारजनों की मदद से कर लेता है। अतः किसी भी प्रकार का आर्थिक बोझ भी नहीं पड़ता। मेड़बन्दी का कार्य भले ही देखने में छोटा लगता हो, लेकिन इनकी उपयोगिता बड़े जोहड़ या छोटे एनिकट से कम नहीं होती। मेड़बन्दी की मदद से पूरे क्षेत्र में बड़े पैमाने पर जल संरक्षण का कार्य किया जाए तो, अधिक उपयोगी होता है। इसके साथ ही ढलान क्षेत्रों में टिंच वाल बनाई जाती है, जो मेड़बन्दी की सहायक छोटी बहिन की भूमिका अदा करती है। अध्ययनों के अनुसार इसके सामाजिक प्रभाव भी अच्छे रहे। फिर बहुत से गांवों में एक साथ कई प्रकार के जल संरक्षण के कार्य किये गये। मेड़बन्दी सचमुच छोटी, किन्तु बहुत उपयोगी संरचना है।

मेड़बन्दी निर्माण विधि : — ढलान पर आवश्यकतानुसार मेड़बन्दी बनाई जा सकती है। खेत के ढलान क्षेत्र में 2 से 4 फीट की ऊंचाई तथा 3–4 फीट की चौड़ाई की मेड़ जरुरत व खेत की लम्बाई के आधार पर बनाई जाए। इसकी सुरक्षा के लिए उपयोगी पौधे एवं घास भी लगाई जा सकती है।

मेड़बन्दी के लाभ : — वर्षा जल के अलावा मेड़बन्दी की सहायता से खेत में कुंए अथवा नलकूप से सिंचाई करने में सुगमता रहती है। खेत में बारिश के पानी का पूरा लाभ मिलता है। मेड़बन्दी समय की बचत के साथ ही जल संरक्षण में भी सहायक रहती है। मेड़बन्दी का अन्य लाभ खेत का सीमांकन भी होता है। इससे आपसी वाद–विवाद कम होते हैं। आज ग्रामीण क्षेत्रों में इंच–इंच जमीन विवाद की जड़ मानी जाती है। इससे मुक्ति मिलेगी। कई बार किसान खेत के चारों चरफ पतली गहरी खाई भी खोदते हैं ऐसा करने से पशुधन से फसल को होने वाले नुकसान से भी बचाया जाता है।

झूर : — कुछ जंगली झाड़ियों और घास को एकत्र करके छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर बीज रोपने से पहले खेतों में फैला दिया जाता है। इसमें अधिकांशतः बाड़ और झोपों की छत में काम आई पुरानी झाड़ियों तथा केर की झाडियों को प्रयोग में लिया जाता है। ये टुकड़े हल चलाते समय मिट्टी से ढक जाते हैं। जमीन में उपस्थित दीमक और अन्य कीटाणु इनका अपघटन कर इन्हें खाद में परिवर्तित कर देते हैं। यह प्रक्रिया वर्षा से पहले अप्रैल एवं मई में खेतों में की जाती है। झूर के लिये जैव पदार्थ जंगलों, चारागाहों या सूड से निकाली गई झाड़ियों से प्राप्त होता है। इन जैव पदार्थों को काटते हैं या भारी लकड़ी से पीटकर छोटे टुकड़ों में परिवर्तित करते हैं।

लागत : एक हैक्टेयर जमीन पर झूर करने में 18 दिन का श्रम लगता है तथा इसकी लागत 1080 रुपये प्रति हैक्टेयर आती है।

लाभ :

- जैविक पदार्थ मिलने से भूमि की उर्वरकता बढ़ती है।
- उत्पादन में बढ़ोतरी होती है।
- झूर करने से भूमि वर्षा जल को अधिक अवशोषित कर सकती है और खेतों में नमी बनी रहती है।
- जैव पदार्थ का बचा हुआ भाग पशुओं के खाने के काम आता है।

विशेष बिन्दु : झूर की उपयोगिता वर्षा की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि वर्षा की मात्रा कम है और खेत में अधिक जैव पदार्थ डाला गया है तो यह हानिकारक होता है। जैव पदार्थों के अपघटन से भूमि में अधिक गर्मी पैदा होती है, जो कि फसल को खराब कर सकती है। इस प्रकार सामान्य या अधिक वर्षा में झूर उपयोगी है अन्यथा कम वर्षा में यह नुकसानदायी हो सकता है।

बुआई – बुआई अर्थात खेतों में बीज बोना। बीज की बुआई निम्न चरणों के अनुसार की जाती है।

बीज की तैयारी (गौजला) : – खेत में बोने के लिये बीजों को मुख्यतः घर पर ही तैयार करते हैं। बीजों का शुद्धीकरण इसलिये किया जाता है ताकि फसल में कीड़े या बीमारियां न लगे।

इस प्रक्रिया में सुबह के समय गोमूत्र को इकट्ठा करते हैं। 1 लीटर गोमूत्र में 10 किलो गेहूँ के बीज डाल दिये जाते हैं। फिर इन बीजों को आँगन में फैला दिया जाता है। इसके बाद इन बीजों के ऊपर राख छिड़क देते हैं और फिर ऊपर गोमूत्र (गौजला) छिड़क दिया जाता है। बीजों को गौजला में मिलाकर 20–25 मिनट तक इन्तजार करते हैं। बीजों को सूखने के लिये छोड़ देते हैं। इस प्रक्रिया को तीन से चार दिन तक सुबह के समय एक बार जरुर दोहराते हैं। इस प्रकार से शुद्ध किये हुए बीजों को तीन से चार दिन के अन्दर बो दिया जाता है। इस प्रक्रिया के अन्दर जरुरत से अधिक गौजला का प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि जरुरत से अधिक गौजला के इस्तेमाल से बीजों में बुवाई से पहले ही अंकुरण शुरु हो जाता है। खेत में बोने के लिये केवल उन्हीं बीजों को चुनते हैं जो मोटे तथा भारी होते हैं और छोटे तथा हल्के बीजों को अलग कर दिया जाता है क्योंकि ये अच्छी फसल के लिये उपयुक्त नहीं होते हैं। इस प्रक्रिया का सबसे बड़ा फायदा यह है कि अगर बीजों को गौजला से शुद्ध किया जाता है तो फसल पर कीट पतंगे आक्रमण नहीं करते हैं, जिससे पेड़ भी पीला नहीं पड़ता है तथा फसल भी अच्छी होती है।

लागत :

इस प्रक्रिया में केवल श्रम की आवश्यकता होती है। गौजला घरेलू स्तर पर ही उपलब्ध होता है।

लाभ :

- गौजला से उपचारित बीजों पर दीमक कभी भी आक्रमण नहीं करती।
- पौधे पीले नहीं पड़ते हैं।
- इससे पौष्टिक एवं बेहतर फसल प्राप्त होती है।

जुताई एवं बुवाई : – जुताई एक प्रकार से हल चलाने की प्रक्रिया है जो खेत के अन्दर की जाती है। इसे स्थानीय भाषा में खडाई करना भी कहते हैं। खेत की जुताई मुख्यतः पहली बारिश के बाद जून से जुलाई के मध्य की जाती है। परंपरागत तरीके से खेत की जुताई बैल, ऊँट या गधों के द्वारा ही की जाती रही है। परन्तु धीरे–धीरे वक्त के साथ अब इनका स्थान ट्रैक्टरों ने ले लिया है। आधुनिक युग में अब राजस्थान के कुछ गांवों में ट्रैक्टरों से ही जुताई हो रही है। ऊँट, बैल या गधों के द्वारा खेत की जुताई करते समय किसान को इनके पीछे चलना पड़ता है और हल इन जानवरों की पीठ/कन्धों से बंधा होता है। किसान हल को ऊपर से नीचे की ओर बल लगाते हुए आगे बढ़ते हैं ताकि हल भूमि में अधिक से अधिक गहराई तक जा सके और नीचे की मिट्टी ऊपर आ जाये। इस प्रकार से समस्त मिट्टी आपस में मिल जाती है, जिससे खेत की उर्वरक शक्ति भी बढ़ जाती है। इस प्रक्रिया में किसान एक हाथ से खेत की जुताई करता है और दूसरे हाथ से वह बीजों को जुती हुई मिट्टी में डालता रहता है। कभी–कभी इस काम को करने के लिये एक व्यक्ति खेत में हल चलाता है और दूसरा व्यक्ति बीजों को डालता जाता है। खेत को पहले बीच में से जोता जाता है फिर किनारों की तरफ। ऊँट के द्वारा खेत की जुताई करने में खेत की लम्बाई के समानान्तर खेत की जुताई करते हैं और फिर इसे अंत में '**U**' (यू) की आकृति में जोता जाता है, ताकि जमीन कहीं पर छूटने न पाये और सम्पूर्ण खेत की ठीक प्रकार से जुताई हो सके। खेत में बुवाई करते समय खेत में हल से जुताई ढलान के विपरीत दिशा (आडी) में की जाती है जिससे वर्षा का पानी सभी खूड में समान रुप से भरा रह सकें। इसी प्रकार चलने वाली हवाओं को भी ध्यान में रखकर बुआई की जाती है। खेत की जुताई करने का सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि इससे खेत की मिट्टी में लोच (लचीलापन) के साथ उसकी उर्वरक शक्ति बढ़ जाती है और फसल की पैदावार ज्यादा होती है।

लागत :

एक हैक्टेयर जमीन को एक जोड़ी बैल या ऊँट की सहायता से एक दिन में जोता जा सकता है। ज्यादातर किसानों के पास स्वयं के ऊँट या बैल होते हैं, अन्यथा इन पशुओं को किराये पर भी लिया जा सकता है। एक जोड़ी बैल या ऊँट का किराया 170 रुपये प्रतिदिन है।

आज के आधुनिक समय में किसान ट्रैक्टर से खेत की जुताई को अधिक प्राथमिकता देने लगे हैं। ट्रैक्टर से जुताई में 'तवी (डिस्क प्लाऊ)' बहुत प्रचलित है। ट्रैक्टर और तावी से तीन साल में एक बार खेतों की गहरी जुताई की जाती है, इससे 12 इंच तक की गहराई में दबी मिट्टी नीचे से ऊपर आ जाती है और मिट्टी की जल अवशोषण क्षमता बढ़ जाती है। तवी के साथ दो तरीके प्रचलित हैं –

- तीन वर्ष में एक बार तवी तथा बीच के दो वर्षों में ट्रैक्टर से कल्टी द्वारा सामान्य जुताई।
- तीन वर्ष के बाद एक बार तवी तथा बीच के दो वर्षों में बैल या ऊँट से जुताई।

कम श्रम एवं जल्दी जुताई करने की दृष्टि से आज के युग में किसान ट्रैक्टर की जुताई एवं तवी की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। इस प्रकार की तवी के फायदे एवं नुकसान निम्न प्रकार से हैं।

लाभ :

- ऊँट से एक हैक्टेयर प्रतिदिन जुताई होती है, जबकि ट्रैक्टर से एक हैक्टेयर प्रति घंटे की दर से जुताई होती है।
- ट्रैक्टर से जुताई की लागत 170 रुपये प्रति हैक्टेयर आती है और काम जल्दी हो जाता है।
- तवी से जंगली पौधे मिट्टी में दब जाते हैं और बिना श्रम के झूर और सूड स्वयं ही हो जाता है।
- ट्रैक्टर के कारण महिलाओं का कार्यभार कम हो जाता है।

नुकसान :

- तवी द्वारा गहरी जुताई से उपयोगी सेवण घास, जंगली पौधों एवं झाड़ियों की जड़ें नष्ट हो जाती हैं और उपयोगी सेवण घास जंगली पौधे कम हो जाते हैं।
- प्राकृतिक रुप से उगने वाली खेजड़ी के पौधे कटकर नष्ट हो जाते हैं।
- जंगली पौधे कम होने से कानाबंदी और झूर के लिये जैव पदार्थ कम हो जाते हैं।

- किसानों को रासायनिक खाद पर अधिक आश्रित रहना पड़ता है, जैविक खाद कम मिल पाती है।
- ट्रैक्टर की जुताई से स्थानीय पेड़–पौधे जैसे खेजड़ी, कैर आदि की जड़ें नष्ट हो जाती हैं।
- बीज की बुवाई समान मात्रा में नहीं हो पाती है।
- अकाल के समय सेवण घास से प्राप्त होने वाला चारा तथा देशी बेर की झाड़ियों से प्राप्त होने वाला चारा (पाला) एवं काटा (पाई) नहीं मिल पाता है अर्थात हमेशा के लिये खत्म भी हो सकता है।

भांज (दुबारा बीज बोना) :

कम वर्षा या अन्य कारणों से कभी–कभी सारे बीज अंकुरित नहीं हो पाते हैं। ऐसी स्थिति में किसान दुबारा बीजों की बुवाई करता है। अधिक से अधिक अंकुरित बीजों को बचाते हुए किसान बीच–बीच में बीज बोते हैं। इस प्रक्रिया को भांज कहते हैं। पहली बुवाई के तीन से पांच सप्ताह के बाद भांज किया जाता है। इसमें किसान पहले बोए गए बीजों की दो कतारों के बीच में हल चलाते हैं और बीज बोते हैं। इस प्रक्रिया को करने के लिये खेत में नमी होना जरुरी है।

लागत :

इस प्रक्रिया में 300 रुपये प्रति हैक्टेयर तक खर्च आता है।

लाभ :

इससे अधिक फसल प्राप्त की जा सकती है। और होने वाले फसलीय नुकसान से बचा जा सकता है।

कटाई : – राजस्थान क्षेत्र की मुख्य फसल बाजरा है, इस प्रान्त में अधिकतर इसी फसल की कटाई होती है। इस प्रक्रिया में सबसे पहले पौधे की बालियों को काट लिया जाता है, फिर उनसे दानों को अलग कर लिया जाता है। उनको सुरक्षित रख लिया जाता है, ताकि समय से पहले बारिश या आँधी चलने से फसल को कोई नुकसान न पहुँचे। इस क्षेत्र में खरीफ की फसल की कटाई कार्तिक माह में और रबी की फसल की कटाई बैसाख माह में की जाती है। फसल की कटाई करने के लिये दरांती नामक उपकरण का प्रयोग करते हैं। यह उपकरण लोहे का बना होता है और इसमें पीछे की तरफ लकड़ी का एक हत्था लगा होता है। फसल कटाई का कार्य परिवार के सभी सदस्य आपस में मिलकर करते हैं, जिसमें

घर की महिलाओं की मुख्य भूमिका होती है। किसान बाली को काटने के बाद कपड़े में बांधकर इसे ले जाते हैं। कटाई को स्थानीय भाषा में लावणी कहा जाता है। सीठ्ठियाँ तोड़कर अलग इकट्ठा की जाती हैं और डोका शेष बचता है। डोके को कुछ दिनों बाद काट लिया जाता है। सीठ्ठियों (बाजरा–ज्वार) को इकट्ठा करके आगे का काम करने के लिये पड़ौसियों को बुलाया जाता है, इस प्रक्रिया को घूटनी कहते हैं। फसल की कटाई के बाद शेष बचे हिस्से को कडब (डोका) कहते हैं जो जानवरों के चारे के काम में आता है। कुछ फसलें जैसे ग्वार, तिल की फसल में सीठ्ठियाँ तथा तने को अलग–अलग करके नहीं काटा जाता है।

कटाई में निम्न फसलें काटी जाती हैं।

कटाई / खूटणी :

- सीठ्ठियों (बाजरा–ज्वार) को इकट्ठा करना।
- ग्वार उखाड़कर इकट्ठे करना।
- मूंग, मोठ, की फली, तरबूज / मतीरा आदि इकट्ठा करना।
- बाजरे के डोके को काटकर इकट्ठा करना।

लाह :

विभिन्न मौके जैसे निदान, कटाई, घर निर्माण आदि पर गांवों के लोग परस्पर सहभागिता से एकजुट होकर काम करते है। इस प्रक्रिया को लाह कहते हैं। कटाई के समय किसान अपने पड़ौसियों व अन्य किसानों को कटाई में सहायता के लिये आमंत्रित करता है। सामान्यतया प्रत्येक परिवार से एक सदस्य इस काम में भाग लेता है। इस प्रकार सब परिवार एक दूसरे के खेत में फसल कटाई में मदद करते हैं। कभी–कभी तो लाह इतनी बड़ी होती है कि पडौसी गांव के लोग भी उसमें सहभागिता (कटाई) हेतु भाग लेते हैं।

लागत :

यह एक सामुदायिक काम है जो पारस्परिक सहयोग से होता है। किसान गांव के अन्य लोगों को मजदूरी नहीं देता है बल्कि वह सभी लोगों को अपनी हैसियत के मुताबिक अच्छा खाना, लाप्सी आदि खिलाता है।

लाभ :

- खेत में लाह से काम जल्दी और एक बार में पूरा हो जाता है।
- लाह से ग्रामीणों के आपसी संबंध में प्रगाढ़ता आती है।

- इस अवसर पर अच्छा खाना परोसा जाता है और सभी लोग इसे उत्सव की तरह मनाते हैं।

मिश्रित कृषि

प्राचीन काल से ही मिश्रित कृषि हमारी कृषि प्रणाली का एक अभिन्न अंग रहा है। हमारे पूर्वजों ने इसकी संकल्पना मौसम की विपरीत परिस्थितियों में फसल सुरक्षा के दृष्टिकोण से की थी। सिंधु घाटी की सभ्यता के एक प्रमुख स्थल कालीबंगा से प्राप्त जुताई के अवशेषों से पता चला कि उस समय भी कई फसलों को मिलाकर मिश्रित कृषि की जाती थी। पातांजलि कृत ''भाग्य'' से भी मिश्रित खेती के प्रमाण मिले हैं।

आज के युग में खेती योग्य भूमि पर जनसंख्या का बोझ दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में मिश्रित कृषि अपनाकर किसान प्रति इकाई भूमि से अधिक उत्पादन ले सकते हैं। मिश्रित खेती एक वरदान है, जिसे सही ढंग से अपनाने पर अधिक आमदनी के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति भी बरकरार रहती है।

मिश्रित खेती का अर्थ है एक ही खेत में दो या दो से अधिक फसल एक साथ उगाना। कई फसलें जैसे ग्वार, तिल, बाजरा, मूंग, मोठ, मतीरा, काचर आदि एक साथ उगायी जाती हैं।

इसमें अलग प्रकार के (तीन या चार तरह के) बीज एक साथ एक ही खेत में बोते हैं। वर्षा अच्छी होने पर अच्छे परिणाम सामने आते हैं। वर्षा कम होने पर भी एक न एक फसल अच्छी हो जाती है। मिश्रित खेती हेतु विभिन्न बीजों का चयन एवं भाग का मिश्रण विशेषकर महिलाओं के द्वारा किया जाता है।

लाभ :

- मिश्रित कृषि से जमीन की उर्वरकता बढ़ती है। मूंग, मोठ और ग्वार की पत्तियां झड़कर मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाती है।
- मिश्रित कृषि वाले खेतों में पशु द्वारा फसल का नुकसान कम होता है।
- भू–क्षरण कम होता है, विभिन्न पौधों की अलग प्रकार की जड़ें मिट्टी को रोक कर रखती हैं।

- कम वर्षा में भी अच्छी उपज (चारा व अनाज) प्राप्त हो जाती है।

हानि :

- किसी एक फसल को होने वाली बीमारी दूसरी फसल को भी लग सकती है।

फसल की सुरक्षा : खेती का अहम् भाग खड़ी हुई फसल की सुरक्षा करना है, अन्यथा किसान का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कई कारक होते हैं जैसे चिड़िया, कीट पतंगे, टिड्डी, कीड़े–मकोड़े, रोगाणु आदि। इसके अलावा मौसम के भी फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकते हैं। समय के साथ परिस्थिति अनुसार पूर्वजों ने फसल के बचाव के लिए विभिन्न तरीके स्थानीय स्तर पर विकसित किए। ये तरीके आज भी काम में लिये जाते हैं और कारगर भी हैं।

सुरक्षा एवं देखभाल – तवाली करना, गोफन, आडवा

चिड़िया किसानों की शत्रु कही जाती हैं, क्योंकि ये किसानों की फसल को नुकसान पहुँचाती है। यह बाजरा, मूंग, मोठ तथा गेहूँ आदि के पके हुये दानों को भी खा जाती है और फसल को बर्बाद कर देती हैं। सरसों की फसल को तो मुख्य रुप से चिड़ियों से बचाना होता है, क्योंकि जब सरसों के बीजों को खेत में बोया जाता है और उनमें सिंचाई की जाती है तो लगभग 3 दिन बाद ही बीज अंकुरित होकर बाहर आ जाते हैं। इसी समय चिड़िया यहाँ आ जाती हैं और नई अंकुरित फसल को बर्बाद कर देती हैं। इसलिये किसान लोग चिड़ियों से अपनी फसल को बचाने के लिये मुख्यतः तीन प्रकार के तरीके इस्तेमाल करते हैं जो कि निम्नलिखित हैं –

- टवाली करना
- गोफन
- आडवा
- **टवाली करना :** – सीरियां निकलने के बाद फली में दाने पड़ने पर फसल की चिड़ियों आदि से सुरक्षा करने के लिये किसान लोग टीन के एक डिब्बे में कंकड़ डालकर उसे ड्रम की तरह बजाते हैं। जिससे चिड़ियां भाग जाती हैं। कुछ लोग जमीन या चारपाई पर बैठकर टीन के डिब्बे को डण्डी से पीटते हैं, जिसकी आवाज सुनकर चिड़ियां भाग जाती है।
- **गोफन :** – रस्सी से बना हुआ एक गोफन बनाया जाता है, जिसके बीच में चमड़ा लगा रहता है। इसमें पत्थर डालकर घुमाकर फेंका जाता है, जो सनसनाहट करता हुआ जाता है और चिड़ियों को भगा देता है।

- **आडवा :** — किसान लोग लकड़ी का एक डंडा लेकर इसे जमीन में गाड़ देते हैं। थोड़ा नीचे की तरफ आडी एक लकड़ी और बांध देते हैं, फिर एक पुराना सफेद फटा हुआ कुर्ता पहनाकर और ऊपर से एक मटकी को काले रंग से रंगकर इसे पहना देते हैं। चिड़िया जब इसे देखती है तो समझती है कि खेत में कोई व्यक्ति खड़ा हुआ है और इस प्रकार से चिड़िया खेत के आस–पास नहीं आती है इस प्रकार फसल की चिड़ियों से एक पारम्परिक तरीके द्वारा सुरक्षा की जाती है।

निदान

निदान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें खेत में फसल के बीच में उगी बेकार की झाड़ियों तथा घास–फूस (खरपतवार) को हटा दिया जाता है, क्योंकि खेत में फसल के साथ–साथ बेकार की झाड़ियां तथा घास भी उग जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि अगर इन खरपतवारों को हटा दिया जाये तो बारिश का अधिक से अधिक फायदा प्राप्त किया जा सकता है। इनको हटा दें तो नमी जमीन में बनी रहती है। निदान की प्रक्रिया बीजों को बोने के लगभग 15 से 30 दिन बाद की जाती है, जब फसल लगभग एक फीट से पौन फीट की हो जाती है। निदान की प्रक्रिया में एक विशेष प्रकार के उपकरण का इस्तेमाल होता है, जिसे कस्सी कहते हैं। यह उपकरण लोहे का बना हुआ होता है और इसमें पीछे की तरफ लकड़ी का एक हत्था लगा हुआ होता है। किसान खेत में खड़ा होकर कस्सी से बेकार की झाड़ियों तथा घास पर चोट मारते हैं और इनकी जड़ों को जमीन से बाहर निकाल लेते हैं। झाड़ियों (खरपतवार) को किसान खेत में से बीन लेते हैं जो कि पशुओं के लिये चारे का काम करती हैं। इस प्रक्रिया का सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि जमीन में बनी नमी केवल फसल के द्वारा ही शोषित की जाती है, ना कि बेकार की खरपतवार के द्वारा जो कि फसल के काम की नहीं होती है। लगभग 25 प्रतिशत अधिक फसल का उत्पादन निदान की प्रक्रिया के तहत बढ़ जाता है। घास पशुओं के चारे के काम आती है, क्योंकि मरुस्थलीय क्षेत्र में पशुओं के लिये इसके अलावा कोई अन्य हरा चारा आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाता है।

मौसमी प्रभाव से बचाव :

पाला से फसल का बचाव :

(अ) पानी से छिड़काव द्वारा : – सर्दी के मौसम में बहुत अधिक ठंड होने पर पाला पड़ने से फसल का नुकसान हो सकता है। पाले से फसल को बचाने के लिये खेत में पानी का छिड़काव करते हैं और शाम को खेत में धुआं कर दिया जाता है। धुएं की गर्मी से पाला फसल पर नहीं पड़ता है।

लागत : यह काम परिवार के सदस्य मिलकर करते हैं। इसमें केवल पानी खर्च होता है। परन्तु यह पानी की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

(ब) अरण्डी के पौधों द्वारा : – सिचिंत खेती में मिर्ची की फसल के साथ अरण्डी के पौधे भी लगाये जाते हैं। मिर्ची के बीज बोने के बाद साथ वाली लाईन में 3–3 फीट की दूरी पर अरण्डी के बीज बोते हैं, जिससे कि वह मिर्ची के पौधे से लम्बा बढ़ सके। इस प्रकार अरण्डी के लम्बे पौधे मिर्ची की फसल को सर्दी की तेज ठण्डी हवा और पाले से बचाते हैं।

फसल की मुख्य बीमारियाँ

तेलिया, गुन्दिया, फनकुड़ी।

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े : – टिड्डी, कातरा, दीमक।

किसान अपनी फसल को कवक, कीड़ों तथा अन्य बीमारियों से बचाने के लिये कीटनाशकों का इस्तेमाल करते हैं, जिसका वर्णन निम्न प्रकार से है –

- ग्वार और तिल की फसल को तेलिया नामक बीमारी से बचाने के लिये गाय के गोबर से बने कंडों में मृत ऊँट की हड्डियों को जलाकर धुआं पैदा करते हैं। जिससे धुआं फसल के ऊपर लगता है और इस प्रकार फसल को कीड़ों से बचाया जा सकता है।
- कुछ किसान गाय के बाड़े से एकत्रित की गई मिट्टी तथा इसमें राख को मिलाकर फसल के ऊपर छिड़काव करके कीड़ों से बचाते हैं।
- फसल को दीमक से बचाने के लिये राख और गोबर मिलाकर छिड़काव करने से दीमक लगना कम हो जाती है। दीमक अधिकतर सूखे में ज्यादा लगती है इसलिये बीजों को गोमूत्र में उपचारित कर बोते हैं।
- फसल को दीमक से बचाने के लिये एक और दूसरा उपचार भी करते हैं। इसमें नीम

की पत्ती और आक की पत्ती को लेकर एक बर्तन में रख देते हैं और इसमें गोमूत्र मिला देते हैं, ताकि पत्तियां गोमूत्र को सोख लें। इस बर्तन को ढक्कन लगाकर बंद कर देते हैं। 15 दिन बाद इस प्रक्रिया से कीटनाशक तैयार हो जाता है। अब इस पदार्थ का छिड़काव फसल के ऊपर करते हैं, जिससे फसल में दीमक नहीं लगती है। इस प्रकार दीमक से फसल को बचाया जा सकता है।

- तिल और ज्वार की फसल में तेलिया और कड़वा कीड़े लगते हैं, जो कि फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। इससे बचाव के लिये मिट्टी के बर्तन में गर्म कोयले में तिल्ली के तेल को जलाकर धुआं कर देते हैं। जिससे इस बीमारी को रोका जाता है।
- जीरे की फसल में अल नामक कीड़े से गुन्दिया और फनकुड़ी नामक बीमारी होती है, जिससे छुटकारा पाने के लिये किसान राख और सल्फर मिलाकर पाऊडर की तरह का मिश्रण बनाते हैं। इस मिश्रण को बोरी या कपड़े की थैली में भर लेते हैं और इसे सुबह के समय हाथ से निकाल कर फसल के ऊपर छिड़काव करते हैं, जिससे गुन्दिया और फनकुड़ी नामक बीमारी से बचाव किया जा सकता है। विशेषकर जीरे की फसल में जब फूल आते हैं तब यह छिड़काव करते हैं।
- सुबह के समय जब पौधों पर ओस की नमी होती है तब फसल पर राख का छिड़काव करते हैं। राख पत्तों से चिपक कर उनका कीड़ों से बचाव करती है।

कातरा : — कातरा पीले रंग का उड़ने वाला एक कीट होता है, जो मुख्यतः बाजरे की फसल पर आक्रमण करता है और फसल को खा जाता है। ये कीड़े चाँदनी रात में प्रकाश की ओर या आग की ओर आकर्षित होते हैं, इसलिये खेत में गड्ढे खोद लिये जाते हैं और गड्ढों के पास आग जलाकर रोशनी कर दी जाती है। ये कीड़े उन रोशनी वाले गड्ढों में गिर जाते हैं, और फिर उन्हें बंद कर दिया जाता है। फसल को बचाने के लिये इस पर राख व नमक घोल का छिड़काव भी करते हैं।

टिड्डी : — टिड्डी दल को भगाने के लिये खेत में पीपा बजाते हैं, जिससे ये भाग जाते हैं। कुछ किसान खेत के चारों तरफ गड्ढे खोद देते हैं, ताकि टिड्डी और इनके नवजात बच्चे इसमें आकर गिर जाते हैं। फिर इन्हें मिट्टी व राख से ढक दिया जाता है। अक्सर टिड्डी अपने अंडे कैर के पेड़ों में देती हैं। किसान इन छिद्रों में सूखा गोबर डालकर आग लगाते हैं, जिससे अंडे नष्ट हो जाते हैं।

बीज संग्रहण : बीज संग्रहण का मुख्य लक्ष्य अगले वर्ष की फसल बोने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों को चुनकर सुरक्षित रखना होता है, ताकि बाजार से बीज न खरीदने पड़े। और समय पर बुआई की जा सके।

बीजों का चयन : – पश्चिमी राजस्थान के लोग सामान्यतः बीजों का चयन अगले मौसम में बोने के लिये करते हैं। अगले मौसम में बीजों को इस्तेमाल करने के लिये फसल से अच्छे स्वस्थ्य बीजों को निकाल लिया जाता है। पारम्परिक तरीके से पहले बीजों को मटके में डालकर इनमें नीम की पत्तियां, राख आदि मिलाकर रख दिया जाता है, क्योंकि बीजों को मुख्य रुप से कीड़ों से खतरा होता है।

बीजों का चयन मुख्यतः तब करते हैं जब फसल पककर तैयार हो जाती है, अर्थात बीजों का चयन अक्टूबर के अंत में या नवम्बर के प्रारम्भ में दीपावली के त्यौहार के आस–पास फसल की कटाई के दौरान करते हैं। बीजों का चयन मुख्यतः बुजुर्ग व समझदार किसानों की मदद से करते हैं।

बीजों का चयन मुख्यतः वहीं पर किया जाता है जहाँ पर फसल की कटाई की जाती है। आमतौर पर फसल से अच्छे बीजों को चुन कर अलग रख दिया जाता है। बाजरा यहाँ की मुख्य फसल है। बाजरे के बीजों का चयन करने के लिये निम्नलिखित तरीकों का इस्तेमाल करते हैं –

- बीजों का चयन तब करते हैं जब फसल खेत में पूरी तरह पककर खड़ी हो जाती है। बीजों को अलग–अलग करके चुनते हैं और फिर इसे इकट्ठा करके सुरक्षित रख देते हैं।
- मुख्यतः मोटे तथा लम्बे (सिठ्ठीयों) बीज ही चुने जाते हैं।
- किसान पीले और गोल बीजों को चुनते हैं। काले, सफेद और टेढ़े–मेढ़े बीजों को हटा देते हैं।
- अच्छे बीजों का चयन करने के लिये अच्छे पौधों का चयन किसान लोग खुद ही करते हैं। किसान देखते हैं कि कौनसा पौधा हृष्ट–पुष्ट और बीमारी रहित है।

लागत : इस कार्य में कोई बाहरी खर्च नहीं आता, यह काम घरेलू स्तर पर स्वयं के श्रम द्वारा किया जाता है।

लाभ :

अच्छे बीजों के चयन से अगले वर्ष फसल की अच्छी पैदावार होती है।

बाजार पर निर्भरता नहीं रहती है।

समय पर फसल की बुआई हो जाती है।

बीज एकत्रीकरण और इनका संरक्षण

बीजों को अगली फसल में इस्तेमाल करने के लिये इनको सुरक्षित किया जाता है, इस प्रक्रिया को बीजों का संरक्षण कहते हैं।

बीज इकट्ठा करना : — फसल का निरीक्षण करके उत्तम किस्म की लंबी और अधिक बीज वाली सीठ्ठियों को देखकर इकट्ठा कर लिया जाता है। उनमें से बीज निकालकर बीजों को मिट्टी के बर्तन जिसमें राख छिड़की होती है, में भर दिया जाता है। इसके बाद नीम की पत्तियां बीजों पर डाल दी जाती हैं। मटके पर ढक्कन लगाकर उसे मिट्टी तथा गोबर के मिश्रण से लीप कर बन्द कर दिया जाता है।

ग्रामीण राजस्थान में बीजों को सुरक्षित करने के लिये विभिन्न प्रकार के तौर तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। जिनमें से कुछ तरीके निम्नलिखित हैं : —

(1) इस विधि में यहां के लोग 25 प्रतिशत राख तथा 5 प्रतिशत नीम की पत्तियों के साथ बीजों को मिला देते हैं। इसके बाद इस मिश्रण को मिट्टी के घड़े में रख दिया जाता है। इस घड़े को ढक्कन लगाकर मिट्टी या गाय के गोबर से सील कर दिया जाता है। प्रत्येक दो या तीन माह बाद सील को तोड़ दिया जाता है। बीजों को आंगन में बिखेरकर सूर्य की रोशनी में रख दिया जाता है। इस प्रक्रिया के बाद फिर बीजों को वापस उसी मटके में नई राख तथा नीम की सूखी पत्तियों के साथ मिलाकर पहले की तरह सीलकर रख दिया जाता है।

(2) इस प्रक्रिया में राख को रात में खुला रख दिया जाता है, ताकि वह ठंडी हो सके और फिर सुबह इसमें बीजों को मिला दिया जाता है। अगर राख के साथ बीजों को शाम को मिलाते हैं तो भाप पैदा होती है जो बीजों को चिटका देती है और बीज खराब हो सकते हैं। इस मिश्रण को एक मिट्टी के बर्तन (घड़े) में रखकर सील कर दिया जाता है।

(3) इस विधि में बलुई मिट्टी के साथ बीजों को मिला दिया जाता है और मिट्टी के बर्तन में

रखकर इसे गाय के गोबर से सील कर दिया जाता है।

(4) इस विधि में बलुई मिट्टी तथा नीम की सूखी हुई पत्तियों के साथ बीजों को मिला दिया जाता है। जब यह मिश्रण अच्छी तरह सूख जाता है तो इसें मिट्टी के बर्तन में रख दिया जाता है, तथा इसको गाय के गोबर से सील कर दिया जाता है।

लागत :

इस काम में प्रयोग होने वाली सामग्री घरेलू एवं ग्रामीण स्तर पर सहज उपलब्ध होती है तथा यह काम परिवार के सदस्यों (विशेषकर महिला) द्वारा होता है, इसलिये इसमें कोई लागत नहीं आती है। केवल मिट्टी के बर्तनों (मटकी) को आवश्यकतानुसार खरीदना होता है।

घास बीज एकत्र करना व उपज : — घास बीज को एकत्र करने के संकेतक के रुप में बीज में नमी की मात्रा को प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः बीज का शुष्क भाग बाली में बीज की स्थिति व कल्ले की अवस्था पर निर्भर करता है। बाली के सिरे के स्पाईकिल व बाली के बाद में निकलने के साथ बीज का भार घटता जाता है। बीजों को एकत्र करने का सही समय तब होगा जब दैनिक झड़ने वाले बीजों की क्षति बीजों के भार में दैनिक वृद्धि के बराबर हो। बीजों की परिपक्वता के बारे में सामान्य दिशा निर्देश यह है कि बीजों को एकत्रित करने का कार्य उस समय शुरु हो जाना चाहिये जब वह मध्यम से सख्त पकने की अवस्था में हो। इस अवस्था की पहचान के लिये बीजों को मध्यम से सख्त दबाव देते हुए नाखून से दबायें। यदि बीज पर निशान छूटता है तो बीज इस अवस्था में पहुंच गया है।

घासों से बीज एकत्र करने के लिये किसी यांत्रिक विधि ा का प्रचलन नहीं है, इसलिए छीलन विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में पके बीजों को पुष्पक्रम से छील लिया जाता है, जबकि अभी तक यह बढ़ रहा होता है व अन्य बीज पक रहे होते हैं। इस विधि से बीज उपज ज्यादा मिलती है व अपरिपक्व बीजों को पकने का समय मिलता है, जिन्हें बाद में एकत्रित किया जा सकता है। इस तरह गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। हालांकि यह विधि बहुत ही श्रमसाध्य व समय लेने वाली है। अच्छी प्रबंधन परिस्थितियों में अंजन घास की

बीज उपज लगभग 50–55 कि.ग्रा., सेवण व घामन की लगभग 90–100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर होती है।

बीजों का अभिसंस्करण : – खेत से बीजों को एकत्र करने के बाद इनको परिस्कृत करना बहुत जरुरी होता है व एक ऐसे उत्पाद के रुप में बेचने के लिये तैयार करना पड़ता है जो दूसरे फसल के बीजों के अलावा अन्य संक्रमणों से मुक्त हो। बीज अभिसंस्करण प्रक्रिया में बीजों में चिपके हुए पुष्पक्रम संरचना, खरपतवार बीजों, दूसरी फसल के बीजों तथा अन्य कचरा को इच्छित बीज के भौतिक गुणों को ध्यान में रखते हुए अलग किया जाता है। इच्छित फसल बीजों में से ऐसे बीज जो सड़े हुए, टूटे हुए, तड़के हुए, क्षतिग्रस्त या निम्न गुणवत्ता के हों, को निकालकर भी बीजों की गुणवत्ता में और सुधार किया जा सकता है। अभिसंस्क्रण के दौरान कुछ अच्छे बीज भी संक्रमित बीजों के साथ निकल जाते हैं, इस नुकसान को कम से कम रखना चाहिए। एक बार बीजों का अभिसंस्करण हो गया तो फिर ये बिक्री के लिये तैयार हो जाते हैं।

लाटा :

कटे हुए पौधों में से अन्न को अलग करने की प्रक्रिया को लाटा कहते हैं। यह काम फसल कटाई के बाद मैदान में किया जाता है। खरीफ की फसल का लाटा कार्तिक (अक्टूबर–नवम्बर) के महीने में और रवी की फसल का लाटा बैसाख (अप्रैल–मई) के महीने में करते हैं।

यह काम घर के पास स्थित समतल कठोर स्थान पर करते हैं। स्थान को 25–40 फीट के घेरे में गोबर से लीपा जाता है। इस लिपी हुई जगह को लाटा कहते हैं। इस स्थान पर सूर्य की रोशनी सीधी आनी चाहिये ताकि फसल सूख सके। पशुओं से सुरक्षा के लिये इसके चारों ओर कंटीली झाड़ियों, पत्थर टुकड़ों से बाड़ बना दी जाती है। लाटा के ऊपर बाजरे की बालियां फैला दी जाती हैं और उसके ऊपर ऊँट, गधे या बैल को बार–बार गोलाकार घुमाया जाता है। पशुओं के भार से सित्तास टूट कर छोटे टुकड़ों में बंट जाते हैं और अन्न अलग हो जाता है। एक आदमी फसल को नीचे से ऊपर पलटता रहता है, जिससे साबुत सित्तास ऊपर आ जाते हैं।

बिखरे एवं टूटे हुए सित्तास को छाजली से फटकारा जाता है। यह काम तीन लोग मिलकर करते हैं। एक आदमी सित्तास को छाजली में भरता है, दूसरा व्यक्ति जब हवा चल

रही होती है तब इस मिश्रण को धीरे–धीरे जमीन पर बरसाता है। इस प्रक्रिया से अन्न के कण पैर के पास गिरते हैं और भूसा थोड़ी दूर उड़ कर एकत्र हो जाता है। तीसरा व्यक्ति झाड़ू से भूसे को बुहारता जाता है। फिर अनाज को छलनी में डालकर छान लेते हैं, और साफ अनाज को बोरों या थैलियों में बंद कर देते हैं।

ग्वार, मूंग मोठ और तिल की फसल को लाटा पर फैला कर लाठी से धीरे–धीरे पीटते हैं, जिससे दाने निकल कर भूसा अलग हो जाता है।

तुम्बा, मतीरों को भी कटाई के बाद लाटा पर फैलाते हैं और फिर निकले बीजों को बाजार में बिक्री के लिये ले जाते हैं।

मिर्ची की फसल को लाटा फैलाकर सुखाते हैं। सूखी मिर्च को बोरों में बंद कर देते हैं।

लागत :

लाटा बनाने में दो ट्रॉली सख्त मिट्टी, दो ऊँटगाड़ी टैंक पानी व कम से कम 6 मजदूरों के श्रम की जरुरत पड़ती है। इसके अन्दर तकरीबन 1300–1400 रुपये का खर्चा होता है। हालांकि यह खर्च एक बार ही होता है। फिर तो प्रतिवर्ष केवल गोबर से लिपाई की जाती है।

लाभ :

लाटा करने से मिट्टी और अनाज आपस में मिलते नहीं है। अर्थात् फसल का दाना साफ–सुथरा प्राप्त होता है।

अन्न का भंडारण

परम्परागत तरीके से अन्न के भंडारण के लिये मिट्टी की टंकी जैसा स्थानीय बबूल की कोमल टहनियों से निर्मित ढांचा बनाते हैं, जिसमें नीचे की तरफ एक बड़ा छेद होता है जहाँ से अनाज निकाला जा सके। इस ढांचे को किन्हारा कहते हैं।

अक्टूबर–नवम्बर में रबी की फसल की कटाई के बाद किन्हारा बनाते हैं। किन्हारा घर की रसोई, आंगन या पिछवाड़े में बनाया जाता है।

विधि : – इसके तल में पत्थर की पट्टियाँ बिछाते हैं जिससे मिट्टी की नमी अनाज में न पहुँचे। इसके ऊपर

खड़ी, लम्बी, सिलेंडर की आकृति की टंकी मिट्टी तथा स्थानीय बबूल की टहनियों से बनाई जाती है। निचले हिस्से में एक बड़ा छेद बनाते हैं। टंकी की अंदरुनी और बाहरी सतह को गोबर से लीप देते हैं। क्योंकि गाय के गोबर को जीवाणु प्रतिरोधी माना जाता है। सूखने पर अनाज को किन्हारा में भर कर इसे ऊपर से बन्द कर देते हैं। खुले स्थान में बने किन्हारा को बारिश से बचाने के लिये छपरा, जूट की बोरी या पौलीथीन से ढक देते हैं।

लागत :

गोबर एवं पत्थर गाँव में ही सरलता से मिलता है। किन्हारा बनाने में 3–4 महिलाओं/पुरुषों का श्रम लगता है। इसमें श्रम की कीमत 200–250 रुपये तक आती है।

लाभ :

- अनाज का घर मं ही भण्डारण किया जा सकता है।
- अनाज कीटों से सुरक्षित रहता है।

राजस्थान में परम्परागत पेड-पौधे

राजस्थान में पेड़ों की सुरक्षा का इतिहास बहुत पुराना है। यहाँ पेड़ देवता की तरह पूजे जाते हैं। राजस्थान के ग्रामीणों की पेड़ के प्रति कर्तव्यनिष्ठा से प्रेरित होकर 'चिपको आन्दोल' की शुरुआत हुई थी। यहाँ के परम्परागत पेड़ जैसे खेजड़ी, बोरड़ी, देशी बबूल, कुमटिया, जाल, कैर, फोग तथा रोहिड़ा आदि, बीजों के प्राकृतिक प्रसार से स्वतः ही खेतों में उग जाते हैं। किसान इन पेड़–पौधों की पूरी देखभाल करते हैं और हल चलाते समय पूरी सावधानी रखते हैं, ताकि इनकी जड़ें क्षतिग्रस्त ना हों।

पेड़ों के मुख्य लाभ निम्न प्रकार हैं –

- पेड़ तेज हवा के साथ खेत की उपजाऊ मिट्टी को उड़ने से रोकते हैं।
- पेड़ों से गिरने वाली पत्तियाँ जमीन को उर्वरकता प्रदान करती हैं।
- पेड़ की जड़ें पानी के तेज बहाव से होने वाले भूक्षरण को रोकती हैं।
- पेड़ फसल को गर्म हवा व लू से बचाते हैं।
- पेड़ की छाया में पशु एवं पक्षी आराम कर पाते हैं।
- खेजड़ी, केर, फोग एवं बोरड़ी की पत्तियाँ पशुओं के लिये चारे के रुप में काम आती हैं।
- खेजड़ी से सांगरी, बोरड़ी से बेर और कुमटिया तथा केर जैसे फल एवं सब्जी खाने के

काम आते हैं। ग्रामीण लोग अपने उपयोग से ज्यादा फलों एवं सब्जियों को बाजार में बेचकर आयवर्धन भी करते हैं।

- पेड़ की लकड़ी से ईंधन मिलता है और टहनियाँ व काँटें बाड बनाने में उपयोगी रहती हैं।

राजस्थान में मुख्यतः ये पेड़ पाये जाते हैं : –

- **खेजड़ी का उपयोग** : – यह राजस्थान का राज्य वृक्ष है इसे तुलसी भी कहा जाता है। इसकी जड़े नत्रजन देती हैं। खेजड़ी से पत्ती, लकड़ी व सांगरी प्राप्त होती है। पत्ती पशुओं (विशेषकर ऊँट, बकरी) के चारे के रुप में काम में आती है। लकड़ी जलाने व कच्चे मकान की छत बनाने के काम आती है।

- **बोरड़ी का उपयोग** : – इससे पत्ती (पाला), लकड़ी, कांटा (पाई) व बेर प्राप्त होते हैं। पत्ती बकरी तथा ऊंट के लिए चारे के काम में आती है। लकड़ी जलाने तथा कांटे खेत एवं घर के चारों तरफ बाड़ बनाने के काम में आती है। बैर खाने के काम में आते हैं।

- **कैर का उपयोग** : – कैर की लकड़ी को घर में खाना बनाने के लिये जलाते हैं और गांव में झोपड़ा बनाने व कच्ची साल/मकान बनाने के काम आती है। कैरीया से सब्जी व अचार बनाया जाता है।

- **जाल का उपयोग :** – जाल की लकड़ी जलाने के काम आती है। उसका फल, जिसे पीलू कहा जाता है। वे खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं। यहाँ के लोग इसे राजस्थान का अंगूर भी कहते हैं, इसकी छाया में जंगली मोर, हिरन, नीलगाय आदि निवास करते हैं।

- **गुन्दी का उपयोग :** – यह पेड़ भी जाल जैसा ही होता है। इसकी लकड़ी जलाने के काम आती है। इसकी पत्तियां ऊंट तथा बकरी खाते हैं। इससे फल भी प्राप्त होता है, जिसे गुन्दिया नाम से जाना जाता है। इसके फल का उपयोग सब्जी एवं अचार बनाने में किया जाता है।

- **कुमटिया का उपयोग :–** इसकी लकड़ी का उपयोग घरेलू मकाने बनाने, जलावन एवं खेती के औजार बनाने में किया जाता है। तथा फल (बीज) का उपयोग सब्जी के रुप में एवं पत्तियों एवं फलियों का उपयोग पशुओं के चारे के लिये किया जाता है।

- **रोहिडा का उपयोग :–** रोहिडा राजस्थान का इमारती वृक्ष है इसकी लकड़ी का उपयोग इमारती सामान (पंलग, कुर्सी, सोफासेट, दरवाजें आदि) बनाने में किया जाता है। इसकी लकड़ी पर खुदाई कर आर्कषक फर्नीचर विदेशों में भी निर्यात किये जाते हैं।

फलोद्यान :

लोगों का पोषण स्तर सुधारने के लिए घरों में छोटे–छोटे फलोद्यान लगाने को भी प्रोत्साहित किया गया है, जिसमें 20–25 पौधों की देखभाल वे स्वयं कर सकें। इन उद्यानों में ज्यादातर नींबू, अनार, गून्दा, बेर आदि के पौधे लगाये जाते हैं।

फलोद्यान के लिये किसान नर्सरी से फलों के पौधे लाते हैं। फलोद्यान के लिये उपयुक्त स्थान पर डंडियों या झाड़ियों से बाड़ बना दी जाती है, जिसमें बावलडिया/देशी बोरड़ी की झाड़ी बहुत काम आती है। 1 बीघा जमीन में 30 पौधे लगाये जा सकते हैं। तैयार पौधों को 2 फीट X 2फीट X 2फीट आकार के गड्ढे खोदकर उसमें खाद आदि मिलाकर बोया जाता है। गर्मी की तेज धूप और सर्दी से पौधों को बचाने के लिये पौधों को झोंपा बनाकर उससे ढक दिया जाता है।

ओरण एवं गोचर (चारागाह): – ओरण, गोचर को मवेशियों के चरने के लिये बनाया जाता है और यह गाँव की सामूहिक जमीन होती है। गाँव का कोई भी मवेशी गोचर भूमि में चर सकता है। इसका प्रशासनिक अधिकार पंचायत के हाथ में होता है, परन्तु यह जमीन इस काम के अलावा किसी अन्य काम के लिये ना तो किसी को एलॉट की जा सकती है, ना ही बेची जा सकती है और ना ही किसी अन्य काम के लिये इस्तेमाल की जा सकती है। कानूनी तौर पर गोचर में कोई भी व्यक्ति खेती नहीं कर सकता है, क्योंकि यह जनता की सम्पत्ति होती है। परिस्थिति के अनुसार इसका कुछ अधिकार सरकार को होता है कि वह इस भूमि को जनता के लिये या किसी अन्य काम के लिये इस्तेमाल कर सकती है। यह पूरे वर्ष इस्तेमाल होती है। गोचर में कुछ समय के लिये चराई को बन्द करने के लिये बरसात से पहले गाँव के कुछ वृद्ध मुखिया आपस में मिलकर एक मीटिंग करते हैं ताकि बरसात में गोचर में फिर से घास उग सके। ओरण एवं गोचर के लिये पंचायत के अधिकारी या मन्दिर के पुजारी नियम बनाते हैं। जिस समय गोचर

को बन्द किया जाता है उस समय गोचर पर एक रखवाला रख दिया जाता है, ताकि गोचर में कोई मवेशी आकर चराई न कर सके। परन्तु कुछ गाँवों में रखवाला रखने की बजाय गोचर की सुरक्षा के लिये प्रत्येक घर से प्रतिदिन एक व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जाता है, क्योंकि गोचर की सुरक्षा करना गाँव के प्रत्येक आदमी की सामाजिक जिम्मेदारी का काम होता है। इसलिये गाँव के सभी लोग इसके लिये बैठकर आपस में सलाह करते हैं फिर उसी हिसाब से गोचर पर प्रत्येक दिन हर घर से एक आदमी ओरण गोचर की सुरक्षा के लिये नियुक्त कर दिया जाता है। ओरण गोचर में परम्परागत पौधे एवं घास उगाये जाते हैं ताकि पशुओं को चारा मिल सके। पश्चिमी राजस्थान में सेवण, धामण, भुरट, गंठिया, धमासिया, लोपडी, दुध ी, गोखरु (धकड़ी), मोथा, बेकर, कटीली, खीप और सीनिया घास बहुत पाई जाती है।

परम्परागत जल संरक्षण पद्धतियाँ

कृषि और उद्योग : – भारत एक कृषि प्रधान एवं ग्रामीण संपन्न देश है। भारत की खेती और उद्योग मानसून पर आधारित रहे हैं। अगर देश में मानसून समय से आता है तो खेती अच्छी होती है। पानी की चमक समाज के हर वर्ग में देखने को मिलती है। भारत की खेती और किसान का जीवन पानी के बिना वीरान और सूना है। पानी के बिना उसमें न तो उत्साह होता है और न ही उमंग। पानी के बिना उसके जीवन में पराधीनता की झलक दिखाई देती है। अच्छी वर्षा के बिना अच्छी खेती नहीं होती। देश की अधिकांश जनसंख्या गांव में रहती है। उसका जीवन खेती पर ही आधारित होता है। बिना पानी के उनका जीवन कष्टप्रद व्यतीत होता है।

बरसात के दिनों में अच्छी बरसात होती है तो भारतीय किसान के लिये पूरे साल का संवत् बन जाता है। समाज में और देश में खुशहाली का वातावरण बना रहता है। देश का प्रगति चक्र भी ठीक रहता है।

हमारे देश में कृषि को भी पर्व और उत्सव के रुप में देखा जाता है। देश में जितनी अच्छी पैदावार होती है और उसका उचित मूल्य भी मिल जाता है, तो गांव से लेकर बड़े–बड़े शहरों के बाजारों में गहमा–गहमी भी बढ़ जाती है। बाजार की गहमा–गहमी इस बात का सबूत है कि समाज में उत्साह है, उमंग है, खुशहाली है और समाज प्रगतिशील है।

परन्तु राजस्थान वर्षा की दृष्टि से वंचित प्रदेश है। सीमित एवं कम वर्षा तथा रेतीली मिट्टी के कारण यहाँ कृषि जल एवं पेयजल की समस्या हमेशा बनी रहती है। विपरीत

प्राकृतिक परिस्थितियों के बावजूद राजस्थान सबसे सघन आबादी वाला मरुस्थल है। हमारे पूर्वजों ने यहाँ की जलवायु एवं वर्षाचक्र को समझते हुये अपने जनजीवन को प्रकृति के अनुसार ढाल लिया और आजीविका चलाने के कई तरीके विकसित किये। खेती के लिये वर्षा जल संरक्षित करने के लिये कुछ परम्परागत ढांचे (खडीन) बनाये गये जिनमें आज भी अकाल के वर्षों में भी फसल प्राप्त हो जाती है। वर्षा का पानी पीने योग्य शुद्ध पानी होता है। पेयजल के लिये वर्षा जल संग्रहण संरचनाएं जैसे टांका, बेरी, नाड़ी आदि हमारे पूर्वजों की देन है। ये सभी परम्परागत तकनीकें उन्होंने स्थानीय जलवायु, मनुष्य की आवश्यकता और सुलभता के आधार पर लोक व्यवहार एवं ज्ञान से विकसित की गईं।

विज्ञान निरन्तर प्रगति कर रहा है, परन्तु राजस्थान की सूखी जलवायु और पानी की कमी का समाधान आज भी विज्ञान के पास नहीं है। आज के परिप्रेक्ष्य में भी प्राचीन परम्परागत जल संग्रहण विधियाँ ही कृषि और लोक जीवन को जीवित रखने में अधिक कारगर हैं। इन अनमोल विधियों को समय के अनुसार कुछ तकनीकी सुधार कर इनके प्रयोग द्वारा हम अवश्य कुछ हद तक पानी की समस्या से निदान पा सकते हैं।

लोक विज्ञान से परिपूर्ण इन कुछ संरचनाओं का वर्णन हम कर रहे हैं जिनका सफलतापूर्वक प्रयोग हो रहा है तथा वे ग्रामीण जीवन का आधार हैं।

खड़ीन

खड़ीन का निर्माण सामान्यतः खरीफ या रबी की फसल कटने के बाद दिसंबर और जून में किया जाता है क्योंकि इस दौरान किसान के पास अतिरिक्त समय होता है। मरुस्थल में जल संरक्षण की तकनीकों का विवरण बिना खडीन के नाम से अधूरा है। खडीन मिट्टी का एक बांध है जो किसी ढलान वाली जगह के नीचे बनाया जाता है जिससे ढलान पर गिरकर नीचे आने (बहने) वाला पानी रुक सके। यह ढलान वाली दिशा को खुला छोडकर बाकी तीन दिशाओं को घेरती है। खड़ीन से जमीन की नमी बढने के साथ–साथ बहकर आने वाली खाद एवं मिट्टी से उर्वरकता में भी वृद्धि होती है। नमी की मात्रा बढ़ने से एक वर्ष में दो फसलें लेना भी संभव हो जाता है।

खड़ीन एक क्षेत्र विशेष पर बनने वाली तकनीक है जिसे किसी भी आम जमीन पर नहीं बनाया जा सकता। बढ़िया खडीन बनाने के लिये अनुकूल जमीन में दो प्राकृतिक गुणों का होना आवश्यक है।

1. ऐसा आगोर (जल ग्रहण क्षेत्र) जहाँ भूमि कठोर, पथरीली, एवं कम ढालदार हो, जिससे मिट्टी की मोटी पाल बान्ध कर जल को रोका जा सके।
2. खड़ीन बांध के अन्दर ऐसा समतल क्षेत्र होना चाहिये जिसकी मिट्टी फसल उत्पादन के लिये उपयुक्त हो।

संरचना :

खड़ीन एक अर्द्धचन्द्राकारनुमा कम ऊँचाई (4 फीट से 5 फीट) वाला मिट्टी का एक बांध होता है। यह ढाल की दिशा के विपरीत बनाया जाता है, जिसका एक छोर वर्षा जल प्राप्त करने के लिये खुला रहता है। किसी भी खड़ीन को बनाने में तीन तत्व महत्वपूर्ण होते हैं : 1. पर्याप्त जल ग्रहण क्षेत्र 2. खड़ीन बांध तथा 3. फालतू पानी के निकास के लिये उचित स्थान पर नेहटा (वेस्ट वीयर) बनाना तथा पूरे पानी को बाहर निकालने के लिये खड़ीन की तलहटी में पाईप लाईन (स्लूम गेट) लगाना। सामान्य समय में मोखा (स्लूम गेट) बन्द रखा जाता है। स्लूम गेट (निकास) का उपयोग उस समय अत्यंत आवश्यक हो जाता है, जब खडीन में वर्षा जल इकट्ठा हो जाये और फसल को पानी की आवश्यकता नहीं हो। यदि उस समय पानी को नहीं निकाला जाये तो फसल के सड़ जाने का खतरा रहता है। खड़ीन 150 से 500 मीटर तक लम्बा हो सकता है। इसका आकार साधारणतया उस क्षेत्र की औसत वर्षा, आगोर का ढाल तथा भूमि की गुणवत्ता पर ही निर्भर करता है।

खड़ीन बाँध (पाल) के ऊपर (टॉप) की चौड़ाई 1 से 1.5 मीटर तक तथा बांध की दीवार में 1:1.5 का ढाल होना चाहिये।

जिस स्थान पर पर्याप्त जल आकर रुकता है उसे ''खड़ीन'' (समरजिंग एरिया) और पानी रोकने वाले बांध को ''खड़ीन बांध'' कहा जाता है। अतिरिक्त पानी के निकास के लिए बनाई गई संरचना को ''नेहटा'' कहते हैं। खेती लायक पानी एकत्र करने के लिए खड़ीन और आगोर का आदर्श अनुपात 1:5 का होना चाहिए।

खड़ीन निर्माण पर लागत

एक 5 हैक्टेयर एकड़ की जमीन पर 650 फीट लंबी व 5 फीट ऊँची एवं ऊपर से 3 फीट व नीचे से 18 फीट चौड़ी खड़ीन के निर्माण के लिए कुल 620 कार्य दिवस (60 रुपये प्रतिदिन) एवं नेहटा निर्माण (5000 रुपये) के हिसाब से लगभग 42,000 रुपये की लागत आती है।

मानसून की अनिश्चितता अन्न की पैदावार पर ज्यादा असर ना डाले, इसी को ध्यान में रखते हुए जुलाई में पहली बरसात के तुरन्त बाद बाजरा बो दिया जाता है। इसके बाद

अगर 60–70 मि.मि. भी बरसात हो गई तो यह बाजरे के लिये पर्याप्त होती है। जमीन की नमी को देखते हुए बाजरा, ज्वार या ग्वार की फसल की जाती है। इनके साथ ही मोठ, मूंग और तिल जैसी दलहन और तिलहन की खेती भी की जाती है। अगर खेतों में घिरा पानी पूरे मानसून भर जमा रहता है और उसके बाद रबी की फसल लगाई जाती है।

मरु प्रदेश में वर्षा कम तो होती है, पर कई बार यह बहुत कम समय में ही तूफानी रफ्तार से गिरती है। फिर ढलान पर पानी एकदम तेज रफ्तार से उतरता है। यह अनुमान है कि 100 हैक्टेयर तक के कई चट्टानी आगोरों से एक बरसात में 1,00,000 घन मीटर तक पानी जमा होकर नीचे आ सकता है। इस प्रकार खड़ीनों पर काफी पानी जमा होता है और यह 50 से लेकर 125 सेंटीमीटर तक ऊंचा हो सकता है। साल में 80 से 100 मि.मी. बरसात जो कम से कम दो तीन दफे तेज पानी पड़ने के रुप में आए खड़ीनों को भरने और रबी तक की फसल देने के लिए पर्याप्त है। [11]यह पानी धीरे–धीरे नवंबर तक सूखता है और तब जमीन में गेहूं और तिलहन जैसी रबी की फसल बोने लायक नमी रहती है। फलौदी के उत्तर पश्चिम हिस्से में तरबूज भी बहुत उगाये जाते हैं। गेहूं और चना भी बोया जाता है। अगर फसल लगाने के समय तक पानी टीका हो तो पहले फाटक (मोखी) खोलकर उस पानी को निकाल दिया जाता है। आमतौर पर रबी की फसल को कोई रासायनिक खाद देने की जरुरत नहीं पड़ती। मार्च तक फसल तैयार हो जाती है।

खड़ीन की खेती में न तो बहुत जोताई–गोड़ाई की जरुरत होती है, न ही रासायनिक खाद कीटनाशकों की। फिर भी बाजरा की पैदावार प्रति हैक्टेयर 9 से 15 क्विंटल तक हो जाती है। अच्छी बरसात हो और पर्याप्त पानी जम जाए तो जौ और गेहूं की फसल प्रति हैक्टेयर 20 से 30 क्विंटल, सरसों और चने की फसल प्रति हैक्टेयर 15 से 20 क्विंटल हो जाती है। राजस्थान नहर से सिंचित खेतों की पैदावार की तुलना में यह पैदावार भले ही कम दिखे, पर यह भी याद रखना जरुरी है कि यह फसल बिना ज्यादा परिश्रम, ज्यादा खर्च और झमेले के हो जाती है और इतने मुश्किल इलाकों में भी फसल का भरोसा रहता है।

महत्त्व :– खड़ीन कंकरीली और चट्टानी जमीन को भी खेती लायक बनाने में कारगर

सिद्ध हुई है। यह शुष्कतम इलाकों में भी किसानों को फसल नहीं तो पशुओं के लिए चारा तो दे ही देती है। खड़ीनों में जमा पानी अपने साथ बारीक और उर्वरक मिट्टी भी लाता है। इसलिए खड़ीनों की मिट्टी की प्रकृति बदल दोमट हो जाती है और वह यहीं के दूसरे खेतों की तुलना में ज्यादा उर्वर हो जाती है। इसमें जैव कार्बन पदार्थों की मात्रा 0.2 से 0.5 फीसदी तक हो जाती है, जो आसपास की जमीन से बहुत अधिक है। फिर इसमें पोटेशियम ऑक्साईड की मात्रा भी ज्यादा होती है। आगोर क्षेत्र में चराई भी होती है, जिससे पशुओं के गोबर और पेशाब की उर्वरता भी वर्षा के पानी के साथ बहकर इसमें आ जाती है। खड़ीन के मेढ के पास प्राकृतिक रुप से खेजड़ी, बोरड़ी, कुमटियां आदि पेड़–पौधे स्वतः ही उग जाते हैं।

खड़ीनों से ढलान वाली मिट्टी में लवणों के बढ़ने पर भी अंकुश लगता है। मरु भूमि में जहां भी पानी जमा होता है, वहाँ जिप्सम की परत ऊपर होने से नुकसान होता है। पर पुरानी खड़ीनों में लवणों की मात्रा हल्की ही आती है। खड़ीन बांधों की दूसरी तरफ जहां रिसकर पानी पहुंचता है लवणों की मात्रा ज्यादा पाई जाती है। स्पष्ट है कि खड़ीनों में आने वाले लवण खुद ब खुद बाहर फेंके जाते हैं। पानी के ऊपर आने वाली मिट्टी साल दर साल खड़ीन के अन्दर वाली जमीन का स्तर थोड़ा–थोड़ा ऊपर करती है और कुछ वर्षों में ही खड़ीन के अन्दर और बाहर की मिट्टी के स्तर और किस्म में काफी फर्क आ जाता है। पुरानी खड़ीनों में तो ऊंचाई का फर्क चौथाई से एक मीटर तक का हो गया है। इस फर्क के चलते भी खड़ीन में जमा पानी का रिसाव बाहर की तरफ होता है और लवण घुलकर बाहर निकलते हैं। अनेक स्थानों पर खड़ीनों के बाहर कुंआ (परकोलेशन वेल) खोद दिया गया है और इस कुंए में भरपूर पानी आता है, जिसका उपयोग पीने और अन्य कार्यों में भी होता है। इसमें रिसाव तेज होता है और इस क्रम में खड़ीन के अन्दर की जमीन से लवणों के बाहर जाने का क्रम भी तेज होता है।

अध्ययनों से स्पष्ट हो जाता है कि जैसलमेर जिले के खड़ीन वाले किसानों की स्थिति बिना खड़ीन वाले किसानों से काफी अच्छी है। चूंकि अधिकांश खड़ीनों का निर्माण पालीवाल ब्राह्मणों ने किया था, अतः उनके पलायन से इसके कौशल में गिरावट आई। फिर इनका रख–रखाव भी उपेक्षित हुआ। बाढ़ के साथ कंकड़, पछीमकर और मोटा रेत भी आ जाता है और खड़ीनों में जमा हो जाता है। आगोर क्षेत्र में बर्बादी होने से यह क्रम तेज हुआ

है। इससे मिट्टी भरने का क्रम भी बढ़ा है। उपेक्षा के चलते अनेक खड़ीन बांध टूट गए हैं या उनमें दरार आ गई है, इनके चलते अब वे पानी को नहीं रोक पाते।

सुझाव :– खड़ीन व्यवस्था को ठीक से चलाने के लिए उसके आगोर क्षेत्र को फिर से हरा–भरा बनाना होगा। इसमें चराई जरुरी है और लाभप्रद भी, पर एक सीमा तक ही। सिंचित जमीन को भी बराबर समतल करते रहना चाहिए जिससे पानी का समान वितरण हो। ऐसा न करने पर पानी जहाँ तहाँ जमा होगा और उसका कुशलतापूर्ण उपयोग नहीं हो पाएगा। तेज बारिश के बाद तूफान की रफ्तार से आया पानी अपने साथ कंकड़, पछीमकर और मोटा रेत लाकर खड़ीन में भर सकता है। इनको समय–समय पर निकालते रहना चाहिए। मिट्टी में लवणों की मात्रा पर भी नजर रखनी चाहिए और अगर ये बढ़े हुए दिखे तो पहली एक दो बरसात का पानी बह जाने देना चाहिए, क्योंकि उसके साथ में अतिरिक्त लवण भी बह जाएंगे। खड़ीन बांध के बाहर कुआं खोदने से भी यह काम हो जाता है। बांध का उचित रखरखाव किया जाना चाहिए। इसकी ऊंचाई 1.5 मीटर से कम नहीं होनी चाहिए और इसमें दरार नहीं आनी चाहिए। सामान्य स्थिति में पानी को ऊपर से निकलने भी नहीं देना चाहिए।

ग्रामीण विकास विज्ञान समिति द्वारा थार में गरीब किसानों की जमीन पर कई पारिवारिक खड़ीन बनवाए गए हैं। उनका मानना है कि खड़ीनों से उत्पादकता निश्चित रुप से बढ़ी है। सूखे के समय चारे की उपलब्धता भी एक बहुत बड़ी उपलब्धी है। समिति द्वारा शुरुआत करने के बाद खड़ीनों के चलन ने जोर पकड़ा है और अनेक गांव के लोगों ने समिति से अपने यहां खड़ीने बनाने में मदद मांगी है। और सरकार द्वारा भी बड़े–बड़े खड़ीन (बांध) नहीं बनाकर छोटे–छोटे पारिवारिक खड़ीन बनाने की शुरुआत हुई है।

टाँका

टाँका एक परम्परागत जल संग्रहण तकनीक है, जिसमें मूलतः वर्षा का जल संग्रहण किया जाता है। यह भूमिगत तथा ऊपर से ढका हुआ टैंक (पक्का कुंड) है, जो सामान्यतया गोल या बेलनाकार होता है। इस जल का उपयोग पीने, घरेलू कार्यों व पालतू पशुओं को पिलाने के लिये किया जाता है। टाँके थार मरुस्थल में बहुतायत संख्या में पाये जाते हैं।

पक्के टाँकों के जरिये वर्षा जल को शुद्ध व सुरक्षित रखा जा सकता है। इसमें कम पानी वाले क्षेत्रों में अधिक समय तक पीने का पानी उपलब्ध रहता है। टाँके मनुष्य को पेयजल समस्या से मुक्ति देते हैं। टाँके व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों स्तरों पर बनाये जाते हैं। व्यक्तिगत व पारिवारिक स्तर पर बनाये गये टाँके परिवार की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं। इन टाँकों का निर्माण ज्यादातर निजी जमीन में होता है। टाँके में संरक्षित जल का उपयोग अक्सर परिवार जन ही करते है। संबंधित परिवार की अनुमति से ही गांव के अन्य लोग पानी का उपयोग कर सकते हैं। समाज की सहभागिता से बनाये गये टाँके पूरे समाज के होते हैं। ये समाज की जरुरत को ध्यान में रखकर सार्वजनिक स्थान पर ही बनाये जाते हैं। जहां किसी भी व्यक्ति के जाने पर बंदिश नहीं होती। समाज के सहयोग से बनाये गये टांके संख्या में एक, अधिक व आकार में बड़े–छोटे हो सकते हैं। टाँकों में जल को सुरक्षित रखने व उपयोग करने का काम तद्‌नुसार परिवार व समाज के लोगों का होता है।

टाँके की संरचना

टांका एक भूमिगत पक्का कुंड है जो अधिकांशतः गोलाकार (बेलनाकार) होता है। टांकों के मुख्य तीन भाग होते हैं :–

आगोर या वर्षा जल ग्रहण क्षेत्र : – आगोर या जल ग्रहण क्षेत्र वर्षा जल एकत्रित करने का स्थान होता है। आगोर से वर्षा जल प्रवेश द्वार से होते हुए टाँके के अन्दर जाता है। कई क्षेत्रों में कठोर जमीन होने से टाँकों का जल ग्रहण क्षेत्र प्राकृतिक होता है। मगर विशेषकर रेतीले स्थानों पर कृत्रिम जल ग्रहण क्षेत्र बनाना पड़ता है। इस जल ग्रहण क्षेत्र में हल्का सा ढलान टाँके की ओर दिया जाता है। टांके के चारों ओर सूखा ढालदार प्लेटफार्म बनाया जाता है जिसमें पानी का बहाव टांके की ओर हो। टांकों में एक से तीन प्रवेश द्वार बनाते हैं जिसके द्वारा पानी टांके में जाता है। इस प्रवेश द्वार पर आधा इंच की वर्गाकार लोहे की जाली लगी होती है। जो कचरे के साथ छोटे–छोटे जीवों जैसे – सांप, चमगादड़, चिड़ियाँ, गोह आदि को अन्दर जाने से रोकती है।

सिल्ट कैचर : – सिल्ट कैचर (टाँके का प्रवेश द्वार) सुनिश्चित करता है कि पानी के

बहाव के साथ आई मिट्टी व अन्य अवांछित वस्तुएं वर्षा जल के साथ टाँके में प्रवेश न कर सके। इस उद्देश्य के लिये एक पक्का लाईनदार लम्बा गड्ढा बनाया जाता है, जिसके बीच में रुकावटदार पछीमकरों की पट्टियाँ या खेली बनाई जाती है। वर्षा जल सर्वप्रथम इसमें एकत्रित होता है, इनमें मिट्टी व अन्य पदार्थ जमा हो जाते हैं व साफ पानी टाँके में एकत्रित हो जाता है। टाँके में दो से तीन तक प्रवेश द्वार बनाये जाने चाहिये, जिनके द्वारा वर्षा जल टाँके में अधिक से अधिक मात्रा में शीघ्रता से आ सके। यह सिल्ट कैचर अलग–अलग डिजाईन से बनाये जाते हैं।

निकास द्वार : – टाँके के प्रवेश द्वार से दूसरे छोर पर 30 गुणा 30 सेमी. का जालीनुमा निकास द्वार बनाया जाता है। जिससे टाँके की क्षमता से अधिक आया हुआ जल बाहर निकल सके। प्रवेश व निकास द्वार दोनों में ही लोहे की जाली लगानी चाहिए। टाँके के प्रवेश द्वार पर चूने, पछीमकर या सीमेंट की पक्की बनावट की जानी चाहिए। टांके से पानी को निकालने के लिये टांके की छत पर एक छोटा ढक्कन लगा होता है, जिसे खोलकर बाल्टी व रस्सी की सहायता से पानी खींचा जाता है।

टाँकों के प्रकार

संस्था ने तीन प्रकार के टाँकों का निर्माण किया है : पहाड़ी क्षेत्र में पहाड़ के ऊपर खुले टांके, रेतीले क्षेत्र में बंद टांके एवं छत के पानी के उपयोग के लिए घरेलू टांके।

खुले टांके : – खुले टांके ऐसे पहाड़ी अथवा ढालू स्थान पर बनाए जाते हैं जहाँ, बरसाती पानी आसानी से और उचित मात्रा में टांके में आ सके। स्थान ऐसा हो जहां कम से कम पशु जाते हों, जिससे उस जलग्रहण क्षेत्र में स्वच्छता बनी रहे। शौच आदि के लिये इंसानी आवागमन पर पाबंदी हो। टांके के पानी को स्वच्छ रखने के लिये लाल दवा, फिटकरी या ब्लीचिंग पाऊडर का इस्तेमाल किया जाता है।

खुले टांके बनाने की विधि : – खुले टांके की गहराई 15–20 फीट तक होती है। टांके का व्यास 10–15 फीट होता है। टांके के निर्माण में पछीमकर, बजरी, सीमेंट व कुशल कारीगर का उपयोग होता है। इसके ऊपरी भाग में पानी आने व जाने के लिये रास्ते बनाये जाते हैं। टांके में पानी आने के रास्ते में कुछ छोटे–बड़े पछीमकर डाल दिये जाते हैं। आते पानी में जो कुछ भौतिक अस्वच्छता होती है, वह पछीमकरों के बीच रुक जाती है। इस तरह टांकों में स्वच्छ पानी पहुंचता

है। टांके भरने के बाद पानी निकासी के रास्ते से टांके में आई गन्दगी व कचरा आदि पानी के साथ आसानी से निकल जाए, इसकी व्यवस्था भी जरुरी होती है। टांके में आए जल का उपयोग केवल पीने के लिये ही किया जाता है। इसका जल तालाब के पानी से अधिक स्वच्छ होता है, क्योंकि यह मवेशी व क्षेत्र की गन्दगी से बचा रहता है। टांके के निर्माण में संस्था ने अक्सर सीमेंट व कुशल कारीगर की मजदूरी का भुगतान ही किया। गांव ने टांके बनवाने में पूरी मजदूरी, बजरी तथा पछीमकर का सहयोग किया।

खुले टांके के लाभ : — पेयजल स्वच्छ रहता है। दूषित जल से संबंधित बीमारियाँ कम होती हैं। कार्य क्षमता बढ़ती है। आर्थिक स्थिति में सुधार तथा जीवन में स्वावलंबन आता है। पानी से चिन्तामुक्त समाज का गतिशील और विकासशील होना स्वाभाविक है।

बंद टांके : — मारवाड़, शेखावटी के क्षेत्र में बंद टांके बनाए गए हैं। बंद टांके रेगिस्तानी क्षेत्र में वर्षा के पानी को धूल एवं रेत से सुरक्षित रखने में उपयोगी रहते हैं। इनमें खुले टांकों की अपेक्षा जल अधिक स्वच्छ रहता है और वाष्पीकरण भी कम होता है। बंद टांके घर के आंगन में, बाड़े में, खेत में, सार्वजनिक स्थान पर, कच्चे रास्ते और सड़कों के किनारे बनाये जाते हैं।

निर्माण विधि : — टांके के निर्माण के लिए 20—30 फीट जगह चाहिये। जिसमें बीच में 10—12 फीट के व्यास में 10 फीट गहराई में कुआंनुमा खुदाई करके ईंटों की पक्की दीवार गोलाई में बनाई जाती है। नीचे का फर्श पक्का बनाया जाता है और ऊपर पटाव किया जाता है। 20—30 फीट के शेष भाग को गोलाई में या वर्गाकार आकृति में पक्का फर्श किया जाता है। इस फर्श पर बरसा पानी ही टांके में जाता है। इस फर्श को पायतन भी कहते हैं। टांके की दीवार फर्श से डेढ़ दो फीट ऊंची होती है, जिसमें चारों तरफ टांके में पानी जाने के रास्ते होते हैं। इनमें लोहे की जाली लगी रहती है। जिससे पानी छनकर टांके में जाये। टांके की छत में पानी निकालने के लिये 2 गुणा 2 का दरवाजा बनाया जाता है, जिस पर लोहे का ढक्कन लगा होता है। इसमें ताला भी लगा सकते हैं। बाल्टी द्वारा आसानी से पानी निकाल मटकी को भरा जा सकता है। आवश्यकतानुसार साथ ही साथ छोटा हैंडपम्प भी लगा दिया जाता है, इससे भी पानी निकालने में आसानी होती है।

बंद टांकों के लाभ : – खुले टांकों की अपेक्षा बंद टांकों में जल अधिक सुरक्षित व स्वच्छ रहता है। ऐसे टांके मैदानी एवं रेगिस्तानी इलाकों के लिये अधिक उपयोगी होते हैं। फ्लोराइड वाले क्षेत्रों में भी टांके अधिक उपयुक्त होते हैं। अधिक फ्लोराइड युक्त पानी पीने से फ्लोरोसिस जैसी खतरनाक बीमारियां होती है। ऐसे इलाकों में टांके बेहतर पेयजल उपलब्ध कराते हैं। और फ्लोरोसिस के बढ़ते खतरे से मुक्ति भी मिलती है।

जीवनी नाड़ी (केस स्टेडी)

लवां, जैसलमेर में स्थित जीवनी नाड़ी के लिये माना जाता है कि यह सैकड़ों वर्ष पुरानी है। लवां गांव के बसने के समय इसका निर्माण हुआ था। इसके निर्माण को लेकर यह किवदंती प्रचलित है कि जीवनी कुम्हारी नाम की एक महिला अपनी गाय के बछड़ो को चरा रही थी तभी उसने देखा कि यहाँ एक गड्ढे में पानी भरा था और वह पानी दूसरे व तीसरे दिन भी यथावत था। कुम्हारी को लगा कि यहाँ यदि बड़ा गड्ढा खोद दिया जाए तो पीने के पानी का जुगाड़ हो सकता है, यही सोच रखते हुए उसने लगातार डेढ़ दो माह तक अपने पशुओं को चराने के साथ–साथ नियमित रुप से खुदाई का कार्य प्रारम्भ किया। कुछ माह पश्चात गाँव वालों ने उसके इस कार्य की प्रशंसा करते हुए उसके साथ एकजुट होकर खुदाई कार्य में सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया और इसी के फलस्वरुप इस खुदाई ने एक बड़ी नाड़ी के स्वरुप को प्रकट किया। इस नाड़ी का आगोर लगभग 60 हैक्टेयर है और 3–4 हैक्टेयर क्षेत्र में पानी भरा हुआ है। इस नाड़ी से लोगो को वर्षभर के लिए मीठा पानी उपलब्ध होता है।

वर्तमान में पंचायत के सहयोग से नाड़ी के चारों ओर बाड़ बनायी हुई है। जिससे कोई भी व्यक्ति नाड़ी एवं नाड़ी के आगोर को गंदा न कर सके। इसी के साथ रामदेवरा में भरने वाले मेले के दौरान यहाँ एक व्यक्ति नियमित रुप से इसका पहरा देता है। नाड़ी में स्नान एवं कुल्ला करने की सख्त मनाही थी। भेड़ बकरी इससे पानी नही पी सकते थे क्योंकि यह माना जाता था कि उनकी नाक से गिरने वाली गंदगी से पानी दूषित हो सकता है। पूर्व में किसी भी नियम के उल्लंघन के दोषी पाये जाने वाले व्यक्ति पर दस रुपये का जुर्माना था। किन्तु सन् 2001 में ग्राविस संस्था के द्वारा इस नाड़ी के खुदाई कार्य के पश्चात इसकी स्वच्छता को मद्देनजर रखते हुए ग्राम विकास समिति के सहयोग से 500 रूपये का जुर्माना तय किया गया। विगत पाँच वर्षों में इस नाड़ी का पानी एक बार भी समाप्त नहीं हुआ है।

सोमेरी नाड़ी

सोमेरी नाड़ी जोधपुर जिले के उग्रास गाँव में 1543 ईस्वी में बनाई गई। ऐसा माना जाता है कि पाँच सौ वर्ष से भी अधिक पुराने इस उग्रास गाँव में स्वामी केशवगिरी जी महाराज रहा करते थे। उस समय यहाँ पानी की बहुत कमी थी। केशवगिरी जी को गाँव वालों से अनबन के चलते गाँव छोड़ने के आदेश दे दिये गये थे। केशवगिरी जी ने उसी समय अपनी जलती हुई धूणी को अपनी झोली में भरकर गाँव से बाहर की ओर प्रस्थान कर दिया। गाँव वालों को अपनी गलती का एहसास हुआ और उन्होंने महाराज से पुनः गाँव में लौट चलने के लिये विनती की, किन्तु केशवगिरी जी ने वापस लौटने से मना कर दिया और गाँव के बाहर ही बैठकर जप करने की मंशा प्रकट कर दी। यहीं जप करते करते उन्होंने लोक कल्याण के उद्देश्य से नियम पूर्वक प्रतिदिन पाँच चद्दर मिट्टी की खुदाई करना प्रारम्भ किया। तब से आज तक यह नाड़ी गाँव के सूखे कण्ठों को तर करने का जरिया बनी है। सोमेरी नाड़ी से पहले भी कईं नाड़ियां बनी थीं, लेकिन देखभाल के अभाव में वे समतल हो चुकी थीं। परन्तु ग्राविस ने पाँच साल के भीतर सभी छोटी–मोटी नाडियों को गांव वालों की सहभागिता से गहरा कर पुर्नजीवित किया वर्तमान में सभी नाडियों में पर्याप्त पानी 6–12 माह तक मनुष्यों एवं जानवरों को मिल रहा है।

आगोर से आगार तक

आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब विज्ञान आज की भांति विकसित नहीं था तब भी समाज ने जल को संग्रहित करने की उन्नत विधियाँ विकसित कर ली थीं। ऐसा माना जाता है कि

सबसे पहले कुई और बेरियों के निर्माण की प्रथा थी जिसमें भूमिगत जल रिसाव से एकत्रित होता था। उसके बाद नाड़ी बनाने की शुरुआत हुई। भूमि का चयन, पात्रता, परीक्षण, निर्माण एवं सुरक्षा/संरक्षण के लिए ध्यान रखने योग्य बिन्दुओं को उन्होंने अपने निरन्तर अनुभवों से प्राप्त किया था।

नाड़ी को नाड़ा, तालाब आदि नामों

से भी जाना जाता है। नाड़ी आकार में छोटी व तालाब, नाड़ा आकार में बड़े होते हैं। थार मरुस्थल में, तालाब और नाड़ियाँ बहुत पहले से ही घरेलू जलापूर्ति के रुप में उपयोग में लाये जाते रहे हैं।

एक नाड़ी या तालाब वर्षा जल का एकत्रीकरण है, जो मिट्टी द्वारा जल रोकने का बांध या खुदे हुये गढ्डे के रुप में निर्मित किया जाता है। इसका बहुत बड़ा जल ग्रहण क्षेत्र होता है। नीचे का ढलाव जिसे बड़ा गड्ढा खोदकर जल संग्रह के लिये बनाया जाता है। गड्ढा खोदने के दौरान निकाली गई मिट्टी को उस गड्ढे के किनारे के ऊपर अर्द्धचन्द्राकार पंक्ति के रुप में लगाया जाता है जिससे की गड्ढे का पानी बाहर न आने पाये। सतही अप्रवाह और क्रियाशील भूमि जलस्रोत खुदे हुये तालाबों में जलापूर्ति के दो साधन हैं। शुष्क प्रदेशों में जहाँ भूमि जलस्तर बहुत गहरा होता है, केवल सतही अप्रवाह ही तालाबों और नाडियों की जलापूर्ति का साधन होता है।

नाड़ी का आकार–प्रकार भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। बड़ी नाड़ियों का जल ग्रहण क्षेत्र 100 से 500 हैक्टेयर तक का होता है। इसकी भरण क्षमता 20 से 40 हजार क्यूबिक मीटर होती है व छोटी नाड़ियों की क्षमता कुछ ही हैक्टेयर जल ग्रहण क्षेत्र में 700 क्यूबिक मीटर तक हो सकती है। इन नाड़ियों को भरने के लिये 150 से 200 मिलीमीटर वर्षा पर्याप्त होती है।

गाँवों के लिये नाड़ी, जल का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होने के साथ एक सामुदायिक जल संग्रहण की प्रभावी तकनीक भी है। नाड़ी समुदाय को विभिन्न तरीकों से लाभ पहुँचाती है। यह मनुष्य व पालतू जानवरों व पशुओं, दोनों के पेयजल की पूर्ति का स्रोत है, जो मरुस्थल में ग्रामीणों के लिये आजीविका का महत्वपूर्ण साधन है। इसका जल भूमि में जाकर आस–पास के कुँओं–बावड़ियों में भी पानी का भराव करता हैं। नाड़ी उन टांकों के पुनर्भरण के काम आती है जिनमें संग्रहित वर्षा जल खत्म हो गया हो। नाड़ी के आसपास की भूमि पर घास व चारे की अच्छी पैदावार हो जाती है। इसके किनारे पर लगे पेड़ जैसे खेजड़ी, बबूल, कुमटिया, बेर, कैर, जाल, रोहिड़ा आदि वर्षा की कमी में भी हरे रहते हैं। खेजड़ी, कुमटिया, जाल व कैर फल सब्जियों के रुप में काम में लिये जाते हैं।

नाडी ऐसी जगह विकसित की जाती है जहाँ भूमि क्षेत्र ढालदार व थोड़ी सख्त हो, ताकि वहाँ पर वर्षा जल संग्रहित किया जा सके। ढालदार क्षेत्र जहाँ से वर्षा जल नाड़ी में एकत्रित होता है उसे जल ग्रहण क्षेत्र कहते हैं। प्रत्येक थार मरुस्थल के गाँव में उसके आकार, उम्र व जनसंख्या के आधार पर एक से पाँच तक विभिन्न आकार वाली नाड़ियाँ पायी जाती हैं। नाडी में पानी भराव की क्षमता उसके जल ग्रहण क्षेत्र और मिट्टी की गुणवत्ता पर

काफी हद तक निर्भर करती है।

तालाब का ढलान गऊ घाट,पणयार घाट की ओर रखा जाता है ताकि पशु पक्षी आसानी से पानी पी सके एवं गंदगी आगार के केन्द्र की तरफ ना आए। साथ ही, खुदाई में कुछ गहरे गड्ढे बीच में छोड़े जाते थे जिनमें पानी स्वच्छ रहता है। आबादी वाले इलाके से प्रायः नाड़ी दूर बनाई जाती है।

खुदाई से पूर्व मिट्टी एवं तल का परीक्षण किया जाता है। जिसमें मिट्टी की गुणवत्ता एवं तल के पक्के होने की जांच होती है। जिस भूमि को नाड़ी या तालाब के लिये चिन्हित किया जाता है उसे खोदकर मिट्टी का प्रकार ज्ञात किया जाता है। यदि बलुई मिट्टी हो तो वहाँ तालाब या नाड़ी का निर्माण नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पानी को सोख लेती है। साथ ही कुछ दिनों तक गड्ढों में पानी भरकर छोड़ा जाता है, जिससे इस तथ्य की प्रमाणिकता हो जाए कि यहाँ जल संग्रहित हो सकता है।

नाड़ीयों में दो कुण्डियां बनाई जाती है। राख और मिट्टी को मिलाकर कुण्डियों पर लगाया जाता है। पशुओं को पानी पीने के लिये बनाई गई कुण्डियों को खेली के नाम से जाना जाता है जिसमें कंकर मिट्टी को गर्म कर बनाए चूने से ढाला जाता है। इन कुण्डियों को खेजड़ी एवं जाल के सूखे पत्तों से ढका जाता है। नाड़ी/तालाब की खुदाई या इनमें बेरी की भी खुदाई हो तो ''लारा'' किया जाता है, जिसमें गाँव के सभी लोग स्वेच्छा से कार्य में सहयोग देते है।

ऐसे तालाब कई शताब्दियों पहले ग्राम बस्तियों के सामूहिक अभिक्रम से खोदे गये थे। उस समय शुरुआत में खोदे जाने पर जो मिट्टी का ढेर आगोर में इकट्ठा किया गया, उसे लाखेटा कहा जाता है। इन नाड़ियों के जल क्षेत्र में आई मिट्टी नियमित रुप ये गाँव के श्रमदान से निकाली जाती थी, जिसमें महिलाओं की भूमिका विशेष महत्व रखती थी। आज भी महिलाएं प्रत्येक अमावश्या और नवरात्रा में नाडी से मिट्टी निकालती हैं। इस प्रकार तालाब का बाँध धीरे–धीरे ऊँचा होता जाता था। आगोर को सुरक्षित रखने, मिट्टी का कटाव रोकने तथा पेयजल की शुद्धता को बनाये रखने के लिये, आगोर में पशुओं का चरना, मनुष्यों का शौच जाना, पशुओं या मनुष्यों को तालाब में स्नान करना, आदि पर पाबंदी थी। जो आज भी विद्यमान है, सामान्यतया तालाबों पर धार्मिक स्थल तथा पेड़ों को विकसित किया गया।

बेरी : — बेरियां उथले रिसाव के कुएं होते हैं जो ऊपर से अत्यंत संकरे होते हैं व आधार चौड़ा होता है। इन कुओं के विस्तृत जल ग्रहण क्षेत्र से वर्षा जल इकट्ठा होता है। इस प्रकार का जल वायवीय क्षेत्र में मुख्य जल धारक के ऊपर की सतह पर होता है। ऐसी संरचना उन स्थानों में बनाई जाती है जहां पानी के गहरे रिसाव को रोकने वाली जिप्सम परत अधोसतही स्तर पर पायी जाती है। जिप्सम परत न

तो जल को अवशोषित करती है और ना ही उससे जल पारगम्य हो पाने के कारण भू–जल में मिल पाता है। राजस्थान में मुख्यतः दो प्रकार की बेरियां पाई जाती है –

1. रिसाव बेरी
2. वर्षाती जल संग्रहण बेरी

रिसाव बेरी : — रिसाव बेरियां मुख्यतः रेगिस्तानी क्षेत्र के जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर, एवं जैसलमेर क्षेत्रों में पाई जाती हैं। इस प्रकार की बेरियां खड़ीनों के पास या तालाबों में बनाई जाती हैं। भूमि का वह क्षेत्र जिसके अधोस्तर में जिप्सम पायी जाती है, उसे सामान्यतः बोलचाल की भाषा में चामी मिट्टी कहा जाता है। जहाँ जिप्सम परत के ऊपर मुड अर्थात कंकरीट वाला क्षेत्र हो

वहाँ इस प्रकार की बेरियों का निर्माण किया जा सकता है, क्योंकि जिप्सम परत न तो पानी को अवशोषित कराती है और न ही पानी पारगम्य हो पाता है। ऐसी स्थिति में मृदा में उपस्थित वर्षा जल भूजल तक नहीं पहुंच पाता है। ये बेरियां सामान्यतः 30 से 40 फीट गहरी होती है।

निर्माण एवं कार्यविधि : — बेरी का मुंह लगभग 3 से 5 फीट व्यास का होता है तथा अधोस्तर पर इसका व्यास 5 से 10 फीट तक हो सकता है। जिप्सम परत से ऊपर कंकरीट वाला क्षेत्र जिसे मुड कहा जाता है उसके नीचे जिप्सम स्तर आता है। रिसाव द्वारा जल इसमें एकत्रित होता रहता है। बेरी की खुदाई उस गहराई तक की जाती है जब तक भूमि के अधोस्तर में जिप्सम परत नहीं आ जाती है। सिद्धांत के अनुसार द्रव्य अधिकता से कम की ओर गति करता है। जल भू–जल के ढलान वाले भाग की ओर आकर संग्रहित हो जाता है। लूज

स्टोन द्वारा इसकी चिनाई की जाती है, क्योंकि लूज स्टोन पानी के रिसाव को अवरोधित नहीं करता। बेरी के मुख अर्थात भू–स्तर से 3 फीट गहराई व 2 फीट ऊँचाई तक पक्की चिनाई की जाती है, ताकि बेरी धंसे नहीं। बेरी से पानी निकालने के लिए बेरी की छत पर एक छोटा ढक्कन लगा होता है, जिसे खोलकर बाल्टी व रस्सी की सहायता से पानी खींचा जा सके। साथ ही बेरी के पास एक खेली बना दी जाती है, ताकि बेकार पानी बहकर उसमें जा सके एवं पशुओं को भी सहज रुप से जल उपलब्ध हो सके।

जिन तालाबों के अधोस्तर के नीचे जिप्सम परत पायी जाती है, उन क्षेत्रों में तालाबों के मध्य इस प्रकार की बेरियों का निर्माण उपरोक्तानुसार किया जा सकता है। तालाबों में निर्मित बेरियां उस समय पेयजल उपलब्ध कराने का सहज माध्यम है जब तालाब सूख चुके हों। इन बेरियों में भी रिसाव द्वारा पानी एकत्रित होता रहता है। तालाबों में पाई जाने वाली बेरियों के ऊपर पछीमकर की पट्टी रख दी जाती है ताकि वर्षा जल के साथ बहकर आने वाली मिट्टी उसमें जमा न हो सके।

जल संग्रहण बेरियां : – रिसाव बेरियों के आकार की ये बेरियां मुख्यतः जोधपुर एवं बीकानेर जिले में पायी जाती हैं। वर्षाती जल संग्रहण बेरियों के निर्माण हेतु एक विशिष्ट प्रकार का भौगोलिक क्षेत्र होना चाहिए। वह स्थान जहां भूमि के अधोस्तर में जिप्सम लेयर, उसके ऊपर पछीमकरों का कठोर स्तर एवं उसके ऊपर मुड अथवा कंकरीट वाला स्तर होता हो उस क्षेत्र में वर्षाती जल संग्रहण बेरियों का निर्माण किया जा सकता है।

निर्माण एवं कार्यविधि : – बेरी के निर्माण हेतु 2 से 5 फीट व्यास की गोलाई में खुदाई प्रारम्भ की जाती है। जहां सतही क्षेत्र रेतीला हो वहां रेतीले भाग की खुदाई करने के पश्चात् उसकी पक्की चिनाई कर दी जाती है, अन्यथा कई बार इसके ढहने की आशंका रहती है। रेत के स्तर के बाद जो कंकरीला क्षेत्र आता है वह मुड स्तर कहलाता है। यह 3 से 5 फीट तक पाया जाता है और इसकी खुदाई के पश्चात् नीचे पछीमकरों का स्तर आता है। पछीमकरों का स्तर नीचे 5 से 10 फीट तक हो सकता है। इस पूरी प्रक्रिया को नाल बांधना या मुंह बांधना कहते हैं। तीनों स्तर तक खुदाई

वर्तुलाकार या सिलेन्ड्रीकृत रुप से की जाती है। पछीमकर के स्तर के नीचे चामी मिट्टी या जिप्सम क्षेत्र आ जाता है। इस क्षेत्र की खुदाई अनुप्रस्थ एवं लम्बवत् दोनों रुप में की जाती है क्योंकि यह जल संग्रहण क्षेत्र होता है। अनुप्रस्थ क्षेत्र की चौड़ाई 20 से 40 फीट तक एवं लम्बवत् क्षेत्र में भी 25 से 35 फीट तक की खुदाई की जाती है। बेरी के जल संग्रहण क्षेत्र की चिनाई करने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि चामी मिट्टी न तो जल को अवशोषित करती है और ना ही पारगम्य है। बेरी के मुख अर्थात भू–स्तर से 2–3 फीट ऊँचाई तक पक्की चिनाई की जाती है। बेरी से पानी निकालने हेतु छत पर एक छोटा ढक्कन लगा होता है, जिसे खोलकर बाल्टी एवं रस्सी की सहायता से पानी खींचा जाता है।

बेरी के चारों ओर वृत्ताकार सूखा ढालदार प्लेटफार्म बनाया जाता है, जिसे जल ग्रहण क्षेत्र या आगोर कहा जाता है। आगोर में गिरने वाले पानी का बहाव बेरी की तरफ किया जाता है। बेरी में एक प्रवेश द्वार बनाया जाता है, जिसके द्वारा वर्षा जल बेरी में संग्रहित होता है। जिसके मुंह पर आधा इंच वाली जाली कचरा रोकने हेतु लगायी जाती है। कई क्षेत्रों में आगोर प्राकृतिक ढालदार जमीन का होता है। अतः यहां कृत्रिम आगोर बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रवेश द्वार के पास सिल्ट कैचर बनाये जाते हैं, ताकि आने वाले वर्षाती जल के साथ मिट्टी बहकर बेरी के अन्दर न जा सके।

बेरी से लाभ

- पूरे वर्ष परिवार के पेयजल, दैनिक आवश्यकताओं व पशुओं के लिये पीने के पानी की उपलब्धता।
- फ्लोराइड युक्त एवं खारे पानी को पीने की मजबूरी से निजात।
- दूर से पानी लाने की समस्या से छुटकारा।
- अधिक रसायन वाले पानी से होने वाली बीमारियों से बचाव।
- इसमें संग्रहित पानी कई वर्षों तक रह सकता है।
- इसके जल में बदबू नहीं आती है।
- पानी लाने में लगने वाले समय की बचत।
- पानी लाने की चिन्ता के कारण होने वाले तनाव से महिलाओं को छुटकारा।

- रेगिस्तानी क्षेत्र जहां पानी के प्रति टैंकर की कीमत 200 से 700 रुपये तक है, ऐसी स्थितियों में वर्षभर पानी उपलब्ध होने से उन्हें आर्थिक रुप में काफी राहत मिलती है।
- बेरी का जल न सिर्फ व्यक्तियों के लिये अपितु पशुओं को भी पेयजल उपलब्ध कराने में सुलभ तकनीक सिद्ध हुई है।
- ग्रामीण किसानों से बेरी के पानी से 20 पौधों वाले फल–बगीचें पनपाये हैं जो उन्हें फल दे रहे हैं।
- जिनके पास बेरियों में पानी बेरियों में पानी रहता है उनके लड़कों की शादी आसान हुई हैं।

जल वहन तथा संग्रहण : – किसान लोग बरसात के मौसम के दौरान अपने पानी को टाँके में इकट्ठा करते हैं। इसके अलावा पानी को इकट्ठा करने का एक अन्य स्त्रोत भी होता है, जिसे नाड़ी के नाम से जाना जाता है। गाँव के लोग पानी को नाड़ी से निकालते हैं और इसे कलसी या पखाल में भरकर अपने घरों तक ले जाते हैं। कलसी एक बड़ा मिट्टी का घड़ा होता है तथा पखाल चमड़े से बना थैला होता है। मगर वक्त के साथ धीरे–धीरे ग्रामीण क्षेत्रों में पखाल का प्रचलन खत्म होता जा रहा है। कलसी

का उपयोग मुख्यतः गर्मी के दिनों में बहुत उपयोगी साबित होता है, क्योंकि गर्मी के दिनों में इसमें पानी ठण्डा रहता है। कलसी का एक फायदा यह भी है कि गाँव के लोग गर्मी के दिनों में पानी को दूर से भरकर लाते हैं, तो तेज धूप होने के बावजूद भी इसमें पानी गर्म नहीं होता है जबकि धातु के बर्तन में पानी गर्म हो जाता है। अधिकांश लोग पानी को लाने का काम पैदल ही करते हैं और इसकी मुख्य जिम्मेदारी घर की महिलाओं की ही होती है। कुछ लोग जिनके पास बैलगाडियां हैं वे पानी को अधिक मात्रा में लाने के लिये बैल गाडियों का प्रयोग करते हैं। क्योंकि बैलगाडियों की सहायता से इसमें काफी मात्रा में कलसियों को रखकर पानी को आसानी से लाया जा सकता है। कुछ लोग पानी को पखाल में भरकर इसे ऊँट की पीठ पर रखकर पानी लाने का काम करते हैं। कुछ लोग पानी को टैंक या ड्रम में भरकर इसे बैलगाडियों पर रखकर लाने का काम करते हैं। खेतों की सिंचाई करने या एक बड़े जन समूह की पानी की जरुरत को पूरा करने के लिये ट्रैक्टर या टैंकर का इस्तेमाल

किया जाता है। इनकी क्षमता लगभग 5000 से 7000 लीटर तक होती है।

लागत :

- कलसी की कीमत करीब 80 रुपये है।
- पखाल की कीमत 500 रुपये होती है।
- एक कलसी या एक पखाल पानी की कीमत 30 रुपये होती है। बैल गाड़ी का मालिक दिन में करीब 3–4 कलसी पानी बेचकर करीब 90–120 रुपये कमा लेता है।
- पानी को ज्यादातर लोग टांकों या कलसी में संग्रहित करते हैं।

खेत तलाई : – जहां जमीन पहाड़ी या पठारी हो अथवा तालाब निर्माण में आर्थिक–सामाजिक दिक्कत हो, वहां निजी स्तर पर खेत के अन्दर ही खेत तलाई बनाई जा सकती है।

खेत तलाई निर्माण विधि : – खेत तलाई का निर्माण खेत में ही होता है। खेत आयताकार या वर्गाकार किसी भी आकृति के हो सकते हैं। इसमें भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार ढ़लान होता है। खेत के अन्तिम ढ़लान क्षेत्र में खेत आकार व अपनी जरुरत के अनुसार लम्बाई–चौड़ाई लेकर 5–8 फीट की गहराई का गड्ढ़ा बनाते हैं। बारिश के दिनों में खेत क्षेत्र में हुई बारिश की जल बूंदों को खेत तलाई में एकत्रित किया जाता है। इस एकत्रित जल को अपनी रबी की फसलों में काम में लेते हैं। जिन खेतों में खेत तलाई होती है, उस खेत में अन्य खेत में बोई गई फसल से भिन्नता होती है। अन्य खेतों में अधिकतर एक ही तरह की फसल होती है, जबकि खेत तलाई वाले में तीन–चार तरह की फसल होती है। पानी के नजदीक क्रमशः गेहूँ, जौ, सरसों, चना, तारामीरा या ऐसी अन्य फसलों को बोया जाता है। उपलब्ध पानी अथवा नमी के अनुसार किसान स्वयं निर्णय ले लेते हैं कि तलाई में कितनी दूरी पर क्या बोना है।

खेत तलाई के लाभ : – पारिवारिक इकाई को जोड़ने व परिवार के जीवन स्तर को सुधारने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। सामाजिक सम्मान, जीवन में गतिशीलता, खेती में गुणवत्ता व विविधता और रोजगार के साधनों को बढ़ाने में सहायक।

झोपा : – पौधे के चारों तरफ 2 फीट के घेरे में मिट्टी खोदकर वहाँ डंडियाँ लगा देते हैं। इससे पौधे तेज गर्मी में झुलसते नहीं है। पौधे बढ़ जाने पर झोपा हटा देते हैं और घास खेतों में डाल देते हैं। इससे पौधों को छाया मिलती है और मिट्टी में नमी रहती है। सर्दी में झोपा पौधों को ठंडी हवा से बचाता है।

सिंचाई : – गर्मी में इन पौधों को प्रतिदिन सिंचाई की आवश्यकता होती है। कुछ किसान बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति का इस्तेमाल करते हैं। इसमें मिट्टी के घड़ों में छेद कर इसे जमीन

में गाड़ देते हैं व पानी भर देते हैं।

जेठी देवी अपने परिवार के 11 सदस्यों साथ एक छोटी कच्ची झोपड़ी में पाबूपुरा गांव के एक कोने में रहती है। ग्राम विकास समिति द्वारा गूंदा इकाई स्थापित करने के लिये लाभार्थियों में चुने जाने के बाद वह 'जीवन के लिये वृक्ष' परियोजना से जुड़ी। उसके पास एक टांका है, ग्राविस दल के पास यह सकारात्मक आशा थी कि पेड़ सूखेंगे नहीं। परन्तु यह उनके परिवारजनों की रुचि और पौधों को जीवित रखने के वास्तविक प्रयास का नतीजा था कि जेठी देवी की इकाई को उन्होंने जमीन में गड़े घड़ों के द्वारा बूंद–बूंद सिंचाई करके इस इकाई को उदाहरण बना दिया। चार महीनों के बाद देखा गया कि लगाये गये 16 पौधों में से 15 पौधे भीषण गर्मी को झेलकर भी जीवित रह सके। यह जेठी देवी के लिये प्रोत्साहन योग्य था। पौधों को जीवित रखने की दर लगभग 94 प्रतिशत थी। ''पहले हमें पौधों को प्रतिदिन पानी देना पड़ता था, परंतु घड़े लगाने के बाद हमें गर्मियों में भी सप्ताह में केवल एक बार पानी देना पड़ता है''। ऐसा जेठी देवी ने बताया। इसके अलावा मिट्टी में लगातार नमी बने रहने से दीमक का प्रभाव भी कम हो गया। जेठी देवी की गूंदा इकाई से तीन साल बाद फल मिलने शुरु होंगे, किन्तु जेठी देवी के प्रयासों को लोगों ने अनदेखा नहीं किया। मरुस्थल की विपरित परिस्थितियों में भी बड़ी संख्या में पौधों को बचाकर उन्होंने अन्य परिवारों को भी पौधे लगाने की प्रेरणा दी।

त्यौहार एवं लोकोक्तियाँ

राजस्थान की शुष्क जलवायु, रेतीली भूमि और जल की दुर्लभता ने यहाँ के जनजीवन को कठिन बना दिया है। राजस्थान के लोग जीविका के लिये भीषण गर्मी, धूलभरी आंधियों को झेलते हुये दिनभर परिश्रम करते हैं। महिलाएं सिर पर घड़ा रखकर पानी लेने मीलों दूर पैदल जाती हैं। तपती धूप में हल चलाना, बीज बोना, सिंचाई करना, पानी का इंतजाम करना आदि अत्यन्त दुष्कर होता, यदि इन लोगों के जीवन में गीत–संगीत और त्यौहार नहीं होते। कठोरतम परिस्थितियों को भी ये लोग अपने तीज–त्यौहारों, लोकगीतों और लोकोक्तियों की मदद से सरल बना देते हैं। दुर्भिक्ष परिस्थितियों वाले जीवन में रंग भरना यहाँ के पूर्वजों की देन है। सरस और रंगीन जीवन राजस्थान की विशेष पहचान है।

कृषि से जुड़े त्यौहार, वर्षा से जुड़ी लोकोक्तियाँ, सावन के ऊपर रचे लोकगीत, पानी के महत्व और संरक्षण से जुड़ी आस्थाएं राजस्थान की संस्कृति से समृद्ध ग्रामीण जीवन को दर्शाती हैं। ग्रामीण स्त्रियों का रंग बिरंगा पहनावा और आभूषण उनके जीवन के प्रति हर्ष उल्लास को प्रदर्शित करते हैं। लोक मान्यताएं और आस्थाएं जन जीवन को प्रकृति और पर्यावरण से जोड़ती हैं और लोग इनके संरक्षण को जीवन में सहजता से उतार लेते हैं। ये त्यौहार एवं आस्थाएं दैनिक जीवन का हिस्सा बन जाते हैं।

राजस्थान में पानी के महत्त्व से जुड़ी अनगिनत लोक कथाएं हैं और ये इसके उपयोग के प्रति आस्था को बताते हैं। बरसात और पानी का आना राजस्थानी लोक जीवन में मंगल, उत्सव और खुशियों का अवसर है। बादलों को लेकर जितने लोकगीत राजस्थान

में हैं उतने शायद कहीं न होंगे। यहां उस गंडेरी के ऊपर भी गाने हैं, जिसे सिर पर रखकर औरतें उसके ऊपर घड़ा लेकर चलती है। अधिंकांश तालाबों के पास मन्दिर हैं। अनेक अवसरों पर जलते दीप पानी में तैरा दिये जाते हैं। पानी हर आदमी के जीवन को खुशियों और प्रकाश से भर देता है। जल संचय, वितरण और उपयोग, सभी काम स्थानीय समुदाय द्वारा साझे तौर पर किये जाते थे। मानसून से पहले सारा गाँव मिलकर तालाब के आगोर या पायतान को पूरी तरह साफ कर देता था। इसी तरह तालाबों से मिट्टी निकालने में पूरा गाँव श्रमदान किया करता था।

एक राजस्थानी कहावत है कि –

घीयड़ो ढूले तो म्हारो काई नहीं जासी।

पानीड़ो ढूले तो म्हारो जी बल जासी।।

अर्थात् घी बिखर जाये तो मेरा कुछ नहीं जाएगा पर यदि पानी बिखरे तो मेरा मन जल जाता है।

त्यौहार

1. आखा–तीज (अक्षय तृतीया) :–

यह त्यौहार वैशाख महीने की वैशाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। जब खरीफ की फसल की शुरुआत होने की सम्भावना होती है तब पहली बार आखा–तीज के दिन खेत में जाते हैं और खेत में जाकर शुभ शगुन पाते हैं। ये शगुन कई प्रकार के होते हैं, जैसे– रास्ते में किसी भी औरत के हाथ में हरी घास लिये हुये मिलना, खेत के अन्दर पेड़–पौधों जैसे खेजड़ी के वृक्ष पर नीमझर (अंकुर) का निकलना आदि शुभ संकेत माने जाते हैं।

किसान खेत में पशु–पक्षी को चुग्गा खाते देखना, चहचहाना, मोर की सुरीली आवाज और चीटियों को रेत में चलते देखना जैसे शुभ संकेत पाता है। औरतें घर में बाजरे की खिचड़ी बनाकर घर में चढ़ावा लगाती हैं फिर उस दिन सारा परिवार खिचड़ी का भोजन करता है। ये त्यौहार सिर्फ राजस्थान में ही मनाया जाता है।

2. गोवर्धन पूजा

गोवर्धन पूजा कार्तिक मास की शुक्ल एकम् को मनाया जाता है।

दीपावली के दूसरे दिन सुबह जल्दी ही 4:00 बजे गोवर्धन पूजा की जाती है। इस प्रक्रिया में औरतें गोबर, बेर, सीटे, मतीरा, काकड़िया, अनाज, बाजरा एवं घी का दीपक जलाकर इसका पूजन करती हैं।

ये त्यौहार खेतों में फसल पकने के आरम्भ में मनाया जाता है, जिससे ये मालूम होता है कि अब खरीफ की फसल पकने वाली है।

गोवर्धन पूजन के चढ़ावे में लगाए गोबर के कंडे का उपयोग सूखने के कुछ दिनों बाद घर में करते हैं। घर में किसी भी प्रकार की मिठाई बनाते समय आंच के साथ कंडे को लगा देते हैं, तो ऐसा मानना है कि वो मिठाई कई दिनों तक खत्म नहीं होती और बरकत ज्यादा होती है।

3. महालक्ष्मी पूजन (दीपावली) :–

दीपावली खुशहाली और सम्पन्नता का पर्व है। यह एक ग्रामीण पर्व है, जिसमें दीपावली पर मतीरे से महालक्ष्मी का पूजन किया जाता है। किसान इस दिन पूजा के लिये खास दीपक बनाते हैं जिसे 'हिण्डोला' कहते हैं।

पूजा के लिये एक बड़ा मतीरा लेते हैं और मतीरे के ऊपरी भाग में छेद करके इसका गूदा एवं बीज निकाल देते हैं। एक मिट्टी के दीये में तेल और रुई लगाकर जलाकर इसके अन्दर रख देते हैं। फिर इसे लेकर आस–पड़ौस, पशुओं के बाड़े और खेतों में लेकर जाते हैं और लोकगीत गाते हैं :

दीवाली रा दीया मीठा

काचर, बोर, मतीरा मीठा

(इसका अर्थ है कि जब दीवाली का दीया जलाते हैं तो काचर, बोर और मतीरा मीठा आता है।)

इसके बाद इस हिण्डोले को सम्भाल कर रख लेते हैं। पशु यदि 'खुरड' नामक बीमारी से ग्रस्त हो जाएं तो इसी सूखे मतीरे के टुकड़े पशु को खिलाए जाते हैं।

इस मतीरे को आने वाले त्यौहार होली तक सुरक्षित रखा जाता है। होलिका दहन के समय होलिका की झलक में से इसे हिंडाले देकर निकालते हैं फिर धुलण्डी के दिन सांयकाल में इसका पूजन करके उसके बीजों को अपने खेत में चींटियों के बिल के ऊपर डाल देते हैं जिससे चींटियाँ उन्हें खाने के रुप में ग्रहण कर सकें।

4. होली :–

होली का त्यौहार मार्च के महीने में आता है। इस त्यौहार के दो अर्थ हैं। पहला यह त्यौहार बुराई पर अच्छाई की जीत के लिये मनाया जाता है। दूसरा यह त्यौहार किसानों के लिये खुशी लेकर आता है, इस समय रबी की फसल पककर तैयार होती है। नई फसल के आगमन की खुशी मनाते हैं और अगली फसल 'खरीफ' की तैयारी आरम्भ करते हैं।

होली के दिन पुरानी सूखी लकड़ियों व घास–फूस को इकट्ठा कर होलिका बनाई जाती है। सायंकाल सभी लोग होलिका के चारों ओर एकत्र होकर इसका सूखे गोबर की माला से पूजन करते हैं। होलिका दहन के समय सभी ग्रामीण इसकी परिक्रमा करते हैं एवं होली के गीत गाते हैं। होलिका दहन की लौ की दिशा के आधार पर अगली फसल का अनुमान लगाया जाता है। मान्यता है कि यदि होलिका की लपटें सीधी एवं ऊँची जाएंगी तो फसल अच्छी होगी तथा जिस दिशा में लौ झुकेगी उस दिशा वाले क्षेत्र में फसल अच्छी होगी।

होलिका की अग्नि में गेहूँ की बालियों और कच्चे चने को भून कर प्रसाद की तरह ग्रहण करते हैं।

5. जवारी : –

जवारी एक शगुन है। यह नवरात्रि के त्यौहार में अक्टूबर महीने में किया जाता है। गेहूँ या जौ की फसल के बीज बोने से पहले अमावस्या, दूज या तीज के दिन जवारी का शगुन करते हैं। जवारी का शगुन मार्च महीने में गणगौर के त्यौहार में भी करते हैं।

एक उथले मिट्टी के बर्तन में मिट्टी भर कर उसमें गेहूँ या जौ के बीज मुट्ठी भर बो दिये जाते हैं और पानी देते रहते हैं। इस बर्तन को घर में पानी के घड़ों के पास या कुएं के पास रखते हैं। बीजों का अंकुरण इंगित करता है कि आने वाली फसल कैसी होगी।

जवारी का दूसरा पहलू भी है। बीज नमी या कीड़ों से खराब तो नहीं हो गये, यह जांचा जाता है। जवारी पुराने बीजों से की जाती है, नए बीजों से नहीं। इससे बीजों के अंकुरण का भी *पुनर्अनुमान* हो जाता है। जवारी की प्रथा के नाम पर किसान में बीजों के संग्रहण की भी आदत बन जाती है ताकि अगली फसल के लिये बीज खरीदने ना पड़ें।

शगुन :–

हमारे ग्रामीण समाज में शगुन–अपशगुन का बड़ा महत्व है। हालांकि शगुन का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, लेकिन फिर भी ग्रामीण जीवन में ये शगुन बहुत मान्यता के साथ अपनाए जाते हैं। शायद ये बुजुर्गों के पर्यावरणीय निरीक्षण और ज्ञान की देन हैं, जिनके द्वारा

वे मौसम या फसल सम्बन्धी पूर्वानुमान लगाते हैं। राजस्थान की ग्राम संस्कृति में प्रचलित कुछ शगुन निम्न प्रकार के हैं।

इन विशेष दिनों में शगुन देखे जाते हैं :–

- आखा तीज के दिन
- वैशाख की अमावस्या पर
- वैशाख की दूज पर
- आषाढ़ की दूज पर
- आषाढ़ की नवमीं पर
- पहली वर्षा पर
- पहली बार हल चलाने पर

- सगुन चिड़ी जिसके ऊपर सफेद काली धारियाँ होती हैं, को देखकर शगुन का अनुमान लगाया जाता है। यदि सगुन चिड़ी हरे पेड़ पर बैठ कर चहचहा रही है तो यह समृद्धि का संकेत है, लेकिन यदि यह उड़ते हुये जोर–जोर से चहचहा रही है तो यह अशुभ संकेत है।
- तीतर भी शगुन का संकेतक है। हरियाली में या सूर्योदय के समय तीतर की मीठी आवाज सुनाई देना शुभ संकेत माना जाता है।
- 'खर डावा, विषा जीवणा' अर्थात् खेत में जाते समय गधा बायी ओर और सांप दाई और दिखे तो यह शुभ शगुन है। गधा सामने ढेंचू–ढेंचू कर रहा है तो यह बुरा संकेत है, परन्तु यदि गधा पीछे से आवाज कर रहा है तो अच्छा संकेत है।
- बैल भी शगुन के संकेतक माने जाते हैं। खेत में बैल पेशाब करके आगे की तरफ बढ़ते हैं तो यह शुभ शगुन है। खेत में प्रवेश करते ही बैल का आगे चलना शुभ है तो पीछे चलना अशुभ माना जाता है।
- वैशाख की अमावस्या पर सुबह के समय बैल उत्तर दिशा की ओर चारा खाते हुये, अपने अगले पैर सामने की तरफ सीधा फैलाकर बैठे हुये दिखना अच्छा शगुन है।
- आखा तीज के दिन प्रातःकाल बैल और गाय का रम्भाना महाकाल का संकेत है।
- हिरण का बायीं से दायीं तरफ चलना शुभ है और दायीं से बायीं ओर चलना अशुभ है।
- खेत पर जाने के दिन अगर कौआ आंगन में आकर दिन में काँव–काँव करता है तो यह शुभ संकेत है। कौआ अगर रात में काँव–काँव करता है तो यह महाकाल का लक्षण है।

- कौआ खेत में रोटी का टुकड़ा गिरा दे तो यह अच्छा शगुन है और यदि कौआ खेत से रोटी का टुकड़ा ले उड़े तो यह बुरा शगुन है।
- चींटी से भी शगुन का अनुमान लगाते हैं। आखातीज के दिन लोग 'लाटा' बनाते हैं और उस पर अनाज बिखेर देते हैं। अगर चींटी लाटा पर से अनाज उठा कर ले जाती है तो यह शुभ माना जाता है।
- खेत पर जाते समय पानी से भरा घड़ा लाते हुये विवाहित महिला का दिखना अच्छा शगुन होता है। परन्तु खाली घड़ा होने पर बुरा शगुन होता है।

सुबह उठने पर किसान को आसमान में बादल का एक टुकड़ा दिखाई दे तो यह अच्छी वर्षा का संकेत है। इन शगुनों पर अधिक गहराई से अध्ययन किया जाये तो इनके पीछे जुड़ी बातें शायद सिद्ध हो सकती हैं, परन्तु अभी इनका कोई ठोस आधार नहीं है।

इसी प्रकार वर्षा का अनुमान लगाने के लिये भी कईं संकेत हैं, जैसे : –

- चिड़िया रेत में नहाए।
- चीटियां जमीन से अंडा लेकर चलती है।
- मोर की सुरीली आवाज आना।
- विषैले जानवर पेड़ों पर चढ़ने लगे।
- बकरी, गाय हवा की दिशा में बढ़े।

लोकोक्तियां

विभिन्न परिस्थितियों पर विभिन्न प्रकार की लोकोक्तियां हैं जो ग्रामीणों के मुख से अक्सर सुनाई देती हैं।

वर्षा पर

- शुक्रवार की रही बादली, रही शनिचर छाए।
  घाघ कहे सुन घाघिनी, बिन बरसे नहीं जाए।।

(शुक्रवार को छाए बादल शनिवार तक छाए रहे तो बारिश अवश्य होगी।)

- आई परवायी बाइ अराड़ा महकठै सुलाई।
  काई करा सूरा भाई दुनिया मरे तिसाई।।
  (श्रावस मास में उत्तरी दिशा में चलने वाली हवा, भादों में पूर्व दिशा से चलने वाली

हवा हो तो बहुत मूसलाधार वर्षा होगी।)

- काला बादल जी डरपाते।
  भूरा बरदल पानी लावे।।

(काले बादल डराते हैं, भूरे बरदल बारिश लाते हैं।)

- तीतर वरणी चीतरी, काजल विधवा रेख।
  वा बरसे वा घर करसे, इनमें मीन ना मेख।।

(विधवा श्रृंगार करे और तीतर के पंखों के रंग के समान बादल हों, तो बारिश होगी।)

- रोहण तपे मृग बाजे।
  आदर अणचितया गाजे।।

(14 दिन गर्मी व 14 दिन आंधी चले तो आदर में निश्चित ही बारिश होगी।)

- आदर आजे बाजे, झोपा झोलो खाए।

(जेठ आषाढ़ के बीच 14 दिन के पक्ष को आदर कहते हैं, इस माह में हवा चले तो केवल झोपें ही हिलते हैं।)

<u>खेती पर</u>

- उत्तम खेती, मध्यम बान।
  निषिद्ध चाकरी, भीख निदान।।

(खेती उत्तम पेशा है, व्यवसाय मध्यम, नौकरी और भीख मांगना निकृष्ट काम है।)

- जाके खेत पड़ा नहीं गोबर।
  उस किसान को जानो दूबर।।

(जिस किसान के खेत में गोबर नहीं डाला गया, वह कमजोर है।)

- श्रावण सुरंगी खेजड़ी, काति दिरंगा खेत।
  श्रावण बिरंगी खेजड़ी, काति सुरंगा खेत।।

(यदि सावन में खेजड़ी बहुत हरी है तो अगली फसल कार्तिक में अच्छी नहीं होगी।)

- आषाढ़ सूनम, घण बादल घण बीज।
  बचद राखो कालोड़ियो, ओंदे राखो बीज।।
- आषाढ़ सूनम, न धण बादल न धण बीज।
  हल बांगो ईधन करो, अबा चाबों बीज।।

(आषाढ़ की शुक्ल नवमी में बिजली चमके तथा बारिश हो तो बैल और बीजों को तैयार रखें, नहीं तो हल को तोड़के ईधन बनाएं।)

- तिल तालरिया, मूंग मगरिये, डेरियों झुकी ज्वार।
  धोरों में निपजे बाजरी दूवो कहे विचार।।

(तालर में तिल, मगरे में मूंग, डेरिये में ज्वार और
धौरों (रेतीले टीलों) में बाजरी अच्छी होती है।)

<u>पशुओं पर</u>

- नाटा छोटा बेचकर, चार धुरंधर तोओ।
  आपण काम निकालकर औरण मंगनी देऊँ।।

(छोटे मोटे पशुओं को बेचकर अच्छे पशु रखना चाहिये ऐसा करने से आप आपने काम के साथ दूसरों की भी मदद कर सकेगें।)

- छोटा मुँह, ऐंठा कान, यही अच्छे बैल की है पहचान।
  नीला कंधा, बेगन खुरा, कभरी ना निकले कंठा बूरा।
  जिस बैल की है लम्बी पूंछें, उसे खरीद लो बिना पूछे।

(अच्छे बैल के बारे में कहा गया है कि जिस बैल का छोटा मुंह, ऐठा हुआ कान, नीला कन्धा, वेगन के रंग का खुर और लम्बी पूंछ हो उसे बिना किसी से पूछे खरीद लेना चाहिये। ये बैल अच्छे होते हैं।)

- नाहरिया नागौरी बड़िया, झाँकी जैसलमेरिया।

  पुंगल वाली गाय देखों, घोड़ा बाड़मेरिया।।

(बैल नागौर का, ऊँट जैसलमेर का, गाय बीकानेर की, और घोड़ा बाड़मेर का बढ़िया होता है।)

<u>अकाल पर</u>

- पग पुंगल, धड़ कोटवा, बाहा बाड़मेर।

  आवत जावत जोधपुर, ढ़ावा जैसलमेर।।

(अकाल की शुरुआत बीकानेर की पुंगल तहसील से होती है। इसका धड़ है वह काटेवा में बांह बाड़मेर में, आना–जाना जोधपुर में और रहवास जैसलमेर में हैं।)

- सतसंवत इकट्ठा कीजे, तीन मिलाए तिगुना कर दीजे, भाग उसमें सात का दीजे।

  शून्य बचे तो महाकाल, एक बचे तो सुकाल, दो बचे तो आधोकाल, तीन बचे तो वर्षा राजे।

  चार बचे तो पवन बाजे, पाँच बचे तो अन्न घनेरा साजे, छः बचे तो आधोकाल।

  (सतसंवत वर्ष के अंक में तीन मिलाकर तीन से गुणा कर दो फिर उसका सात से भाग करो। अगर शून्य बचे तो उस वर्ष महाकाल होगा, एक बचे तो सुकाल, दो बचे तो आधाकाल, तीन बचे तो अच्छी वर्षा, चार बचे तो केवल हवाएं चलेगी, पाँच बचे तो अन्न खूब होगा और छः बचे तो आधाकाल होगा।)